प्राक्कथन

हिन्दी-साहित्य के इतिहास से यह स्पष्ट है कि पुरुषों की भांति हमारी देवियों ने भी साहित्य के निर्माण का पुनीत और प्रशंसनीय कार्य बड़ी सहृदयता और रुचिरता के साथ किया है। हिन्दी साहित्य के प्रारंभिक अथवा प्रथम काल में तो कदाचित पुरुषों को इस कार्य मे देवियों का सहयोग न प्राप्त हो सका था और हो भी न सकता था क्योंकि उस काल में देश और समाज की दशा ही कुछ दूसरी थी। वह युग था वीर-काव्य का, देश के वीरो का यशोगान करके नवयुवकों में वीरोचित भाव-भावनाओं के जागृत करने तथा देश-समाज और धर्म की स्वतंत्रता के लिये प्राणोत्सर्ग करने के लिये उन्हे प्रोत्साहित करने की ही आवश्यकता उस समय थी। इसमें स्त्रियाँ कोई विशेष भाग न ले सकीं, यद्यपि वे ले सकती थीं और उन्हे लेना भी चाहिये था क्योंकि वीरांगनायें ही वीर प्रसवा पूतनामा मातायें होती हैं और उन्हीं से समाज में शूर वीर, त्यागी और देशानुरागी युवक उत्पन्न होकर स्मरणीय कार्य करते हैं। किंतु हमारे साहित्य के इतिहास में ऐसी वीर-भाव-भावना भूषिता तथा वीर काव्य-लेखिकाओं का कोई विशेष उल्लेख नहीं। हो सकता है कि उनकी रचनायें हमें अब तक उपलब्ध न हो सकी हों यह विषय हमारे लिये

खोज का ही विषय है। जब तक खोज से हमें इस विषय का पूरा परिचय नहीं प्राप्त हो सकता तब तक तो यही कहा जा सकता है कि उस काल मे स्त्रियों ने इस ओर ध्यान न दिया था।

द्वितीय या धार्मिक काल से स्त्रियों ने साहित्य-रचना का कार्य प्रारम्भ किया। यह काल था भी ऐसा कि स्त्रियां साहित्य के क्षेत्र मे प्रविष्ट हो सकती थीं। इस समय मे देश और समाज की अवस्था भी इसके लिये सर्वथा अनुकूल थी।

साथ ही इस काल साहित्य या काव्य की जो प्रगति रही, जैसी शैली और भाव-भावना-धारा चली वह सब भी स्त्रियों की मनोवृत्ति तथा प्रकृति के अनुकूल रही। यही कारण है कि स्त्रियों ने इस काल की काव्य-शैली तथा विचारधारा को विशेष रूप में अपनाया है। उस काल मे इसीलिये स्त्रियों ने साहित्य-रचना-क्षेत्र मे पुरुषों के साथ पूरा भाग लिया और बराबर धार्मिक-काव्य की परम्परा को आगे बढ़ाती रहीं हैं।

यह तो प्रत्यक्ष ही है कि स्त्रियों मे पुरुषों की अपेक्षा अधिक सबल भावना शक्ति, भावानुभूति-क्षमता तथा सरल और कोमल मनोवृत्ति रहती है। उनमें रागात्मक वृत्ति विशेष रूप से प्रबल और प्रधान होती है। इसलिये उन पर ऐसे ही साहित्य या काव्य का अधिक गहरा प्रभाव पड़ता है जो रसात्मक होकर हृदय से ही सम्बन्ध रखता हो। जिसमें सर-सता और सहृदयता की पूरी छाप हो। धार्मिक काल में ऐसे

ही काव्य की परम्परा उठी और आगे बढ़ी। विशेषतया कृष्ण-काव्य की भव्य-भाव भावनाभरी शाखा में यह गुण पाया जाता था इसीलिये स्त्रियों ने इसी शाखा को विशेष रूप से अपनाया है और अधिकतर कृष्ण-काव्य ही रचा है। इस काव्य-क्षेत्र मे पद-शैली की रुचिर रचना का जो प्रचुर प्रचार रहा और गीत-काव्य की रोचक रचना-रीति का जो प्रावल्य रहा उससे स्वभावतः स्त्री समाज अधिक समाकृष्ट हुआ। और इसी का उसने अनुसरण भी अपेक्षा कृत अत्यधिक किया। राम-काव्य, नीति-काव्य तथा कला-काव्य की ओर उनका ध्यान इतना अधिक आकृष्ट नहीं हो सका। इन क्षेत्रों मे भी व्यक्तियों ने कार्य किया अवश्यमेव है, किन्तु उतना नहीं जितना कृष्ण-काव्य के क्षेत्र में। कृष्ण काव्य मे कृष्ण का परम सुन्दर और सरस रूप ही लिया गया है, वे परम मनोहर बालक और परम प्रेमी तथा शीलवान नायक के ही रूप मे विशेषत या चित्रित किये गये है। उनका प्रेम यद्यपि लौकिक होता हुआ अलौकिक रहा है। साथ ही अन्य भावों के साथ कृष्ण-भक्ति मे दाम्पत्य अथवा माधुर्य भाव की तथा वात्सल्य भाव की ही विशेषता रही है। यही सब ऐसे प्रमुख कारण हैं जिन्होंने हमारी बहुत सी देवियों को कृष्ण-काव्य की ओर समाकृष्ट कर उन्हें उसकी ही-सुधा धार मे निमग्न कर रक्खा था।

रीतिकाल मे भी काव्य कला-कौशल के अन्तरतल में कृष्ण-भक्ति नाविल सन्निहित रही है। राधा-कृष्ण तथा गोपी

कृष्ण की ही ललित लीलायें मुक्तक काव्य के रूप में चातुर्य-माधुर्य तथा रुचिर रोचकता के साथ चित्रित की जाती रही हैं। अतएव इस काल में भी स्त्रियों ने अपने अनुकूल विचार-धारा तथा रचना-शैली पाकर स्तुत्य कार्य किया है। यद्यपि उन्होंने पुरुषों के समान काव्य-कौशल का प्रचुर प्रतिभा पूर्ण तथा बुद्ध्यात्मक वाद चातुर्यमय काव्य नहीं लिखा फिर भी इस क्षेत्र मे भी वे बहुत पीछे नहीं रहीं। चन्द्रकला बाई जैसी कवियित्रियों ने इस क्षेत्र मे सराहनीय कार्य किया है। इसी काल में उत्तर भाग में विशेष रूप से प्रचलित होने वाली समस्या पूर्ति की कला के प्रवर्धन मे भी स्त्रियों ने अच्छा सहयोग किया है। इस कला के भी क्षेत्र मे उन्होंने अपनी प्रतिभा-पटुता का पर्याप्त परिचय दिया है। हाँ यह बात अवश्यमेव हुई है कि इसी काल से कवियित्रियों की संख्या मे कुछ न्यूनता तथा उनकी साहित्य-सेवा मे कुछ शिथिलता सी आ चली है और आधुनिक युग के पूर्व काल में स्त्रियों की साहित्य सेवा स्थगित हो गई थी, एक प्रकार से उसका लोप ही सा हो गया था।

आधुनिक युग के इस वर्तमान काल में फिर स्त्रियों ने साहित्य रचना-क्षेत्र में सराहनीय साहस और उन्नत उमगोत्साह के साथ कार्य करना प्रारम्भ किया। खड़ी बोली के गद्य साहित्य के प्रवर्धन में तो उनका इतना अच्छा भाग नहीं किन्तु खड़ी बोली के काव्य-क्षेत्र में उनका रचना-कार्य यथेष्ट और अच्छा

हुआ है, सुभद्रा कुमारी चौहान, लली जी, नलिनी जी और महा `वी वर्मा का रचना-कार्य सर्वथा स्तुत्य हुआ है। इन प्रमुख कवियित्रियों के साथ ही चकोरी और कोकिल जैसी कतिपय कवियित्रियाँ अब भी प्रशंसनीय रचना-कार्य कर रही हैं। आशा है कि ऐसी ही तथा इनसे भी बढ़ कर रचनाये करने वाली देवियां साहित्य-क्षेत्र में आकर भारती का भडार भरेंगी।

प्रस्तुत संग्रह स्त्रियों के द्वारा रचे गये साहित्योद्यान से बड़ी सहृदयता तथा भावुकता के साथ चुने गये सुन्दर प्रस्नो का हृदयहारी हार ही है। इसमें मीरा बाई से लेकर वर्तमान समय की प्रमुख कवियित्रियों तक की सुन्दर रचनाये एक चतुर आलोचक तथा कवि हृदय रखने वाले सुयोग्य संग्रहकार के द्वारा संकलित की गई हैं। यद्यपि इस पुस्तक से पूर्व श्री निर्मल जी के द्वारा स्त्री कवि कौमदी के नाम से एक सुन्दर संग्रह हिन्दी संसार मे आ चुका था और कुछ अन्य लेखकों के द्वारा भी ऐसी ही कुछ अन्य पुस्तके भी उपस्थित की जा चुकी थीं किन्तु उन सब में आलोचनात्मक अश की कमी थी जिसकी पूर्ति का प्रयत्न इस सग्रह मे किया गया है। यद्यपि प्रत्येक कवियित्री की रचनाओ पर पूर्ण रूप से आलोचनात्मक प्रकाश इसमें भी नहीं डाला गया फिर भी साधारण जनता तथा विद्यार्थियों के लिये पर्याप्त प्रकाश फेका गया है। हम इस सुन्दर संग्रह के लिये सम्पादक या संग्रहकार को हार्दिक बधाई और साधुवाद देते हैं।

विद्वजन कृपाकांक्षी
रामशङ्कर शुक्ल "रसाल"
एम० ए० डी० लिट्०

प्रयाग विश्वविद्यालय
१९—१२—४०

शीघ्र ही प्रकाशित होगी—

'महादेवी वर्मा'

वर्तमान हिन्दी का काव्य साहित्य महादेवी जी की प्रांजल श्री विभूत से आभूषित है। इस पुस्तक मे उन्ही के क व्य का विशद विवेचन है। इसके लेखक श्री गंगाप्रसाद जी पाण्डे तथा श्री संतकुमार जी वर्मा हैं। वर्तमान काव्य के आलोचको मे पाण्डे जी का नाम अपरिचित नही, इस पुस्तक मे आलोचक द्वय ने महादेवी जी की कविताओ का उनकी कृतियो के क्रम से पाठको के लिये एक बहुत ही उत्तरदाइत्व पूर्ण अध्ययन उपस्थित किया है। अपने आलोचक जीवन के उस काल से ही पाण्डे जी ने महादेवी जी पर पाठकों को जो सामग्री दी है उसके विचार से इस पुस्तक की उपादेयता अत्यन्त बढ़ जाती है। पुस्तक मे, महादेवी जी की कृतियो, भावनाओं तथा उनकी काव्य विशेषताओं का एवं काव्य की सहज प्रवृत्ति प्रेरणाओं का मार्मिक निदर्शन है। महादेवी जी पर यह पहिली पुस्तक है, उनके पाठको की सुबोधता में इस पुस्तक की सहायता निस्सन्देह सोपान का काम करेगी।

———

सस्नेह

विषय-सूची

मीराबाई

मीराबाई

हिन्दी-जगत में अनेक कवियों ने भक्ति और ईश्वर-प्रेम में पीड़ित होकर गाया है। तुलसी, सूर, कबीर, इत्यादि सभी ने, और सभी ने अपने प्रेम-संसार को भावों की वीणा से गुंजित करते हुये अन्तर के परदों को भी खोल देने का प्रयत्न किया है। किन्तु मीरा की सी विरह-झंकार किसी की वीणा से भी निकलती हुई नहीं सुनाई देती। मीरा के विरह-गीत सच्चे विरह के गीत हैं। उन्होंने जो कुछ गाया है, हृदय और प्राणों के साथ गाया है। उनके शब्द-शब्द मे उनके हृदय की कसक है, उनके प्राणों की आकुलता है। उनकी कसक और उनकी वेदना, इतनी आगे बढ़ गई है कि वह मूर्ति मान सी हो उठी है। यदि उसके प्रवाह मे बहिये, हृदय मे मानवी भावनाओं को बटोर कर कान लगा कर सुनिये तो मीरा के पदों मे मीरा के घुँघुरू बजते हुये सुनाई देते हैं। वे घुँघरू बजते हुये सुनाई देते हैं, जो मीरा की भाँति प्रेम का आसव पीकर स्वयं भी विरह के गीत बिखेरते रहते हैं। मीरा की यह एक अपनी विशेषता है। इस विशेषता ने हिन्दी-साहित्य

मे ही नहीं, विश्व-साहित्य मे भी मीरा को अमर बना दिया है। मीरा की सी प्रेम-साधिका और वियोग-गायिका कदाचित् ही संसार के किसी साहित्य मे उपलब्ध हो सके। वह प्रेम, वह वियोग, वह आकुलता और वह तल्लीनता! मीरा के पदो को छोड़ कर उस का और कहाँ दर्शन हो सकता है?

मीरा के गीति काव्य उनके विरह के गीति-काव्य हैं, उनकी अपनी वियोग-वेदना के सजीव चित्र है। उन्होंने अपने पदों में अपने जिस प्रियतम का आह्वान किया है, वास्तव मे उसके लिये उनका हृदय छटपटाता रहता था। वे उस से मिलने के लिये प्रचण्ड आँधी से भी अधिक गतिवान और समुद्र से भी अधिक गंभीर थीं। अत्याचारों की अग्नि में जलती थीं, कष्टों और यंत्रणाओं की झाड़ियों मे हंसतीं-मुस्कराती हुई पैर बढ़ाती थीं, किन्तु प्रियतम के नाम को क्षणभर के लिये भीं अपने ओठों से न विलग करती थीं। प्रियतम के प्रेम और उसके अभाव ने उन्हें स्वयं प्रेम और वेदना मय बना दिया था। उनके पंच भूतात्मक शरीर से वे नहीं बोलती थीं, बल्कि बोलता था, उनका प्रेम, उनकी वेदना और उनका विरह। वे दिन रात चारों ओर प्रेम मे मतवाली बन कर विरह के गीत छिटकारती फिरती थीं। ऐसे गीत छिटकारतीं फिरती थीं; जिनमें कि उनका हृदय बोलता था, उनके प्राण झंकृत होते थे।

मीरा के इस प्रेम-विरह में एक बहुत बड़ी विशेषता है, और यही विशेषता उनके वास्तविक प्रेम का वास्तविक चित्र भी

खींचती है। मीरा का हृदय प्रियतम के वियोग से व्याकुल तो है, किन्तु उसमें शोक और विषाद के लिये स्थान नहीं। मीरा अपने प्रियतम के विरह में उदास और निराश न होकर उन्माद के आनन्द में नाचती और गाती है। दूसरे शब्दों मे यह कहना चाहिये, कि वियोग की वेदना ने उन्हे इतना अधिक वेदना शील बना दिया है, कि वे मतवाली बन गई हैं, और उनकी सारी वियोग-वेदना आनन्द के रूप मे परिणत हो उठी है। मीरा जब इस 'आनन्द' को लेकर आगे चलती हैं, तब वे फिर किसी की चिन्ता नहीं करतीं। वे इसी आनन्द के उन्माद मे राज-प्रासाद को छोड़ देती है, विष का प्याला ओठों से लगा लेती है, और डाल लेती हैं, सर्पों की गले मे माला। वास्तव मे बात तो यह थी, कि वहाँ मीरा का अस्तित्त्व ही नही था। वे आनन्द में इतना विभोर हो उठी थीं, कि उन्हें अस्तित्त्व का ज्ञान ही नही था। वे एक पगली के सदृश थीं। उन्हें न अपनी चिन्ता थी, और न संसार की। संसार की सीमाओं और शृंखलाओं का उनकी दृष्टि में कुछ भी मूल्य नहीं था। वे सब को तोड़ कर अपने प्रियतम के पास जाना चाहती थीं। प्रियतम की लौ उनके हृदय मे इस प्रकार समाई हुई थी, कि उसके समक्ष उन्हे ससार मे कुछ दिखाई ही नहीं देता था। मीरा की इस एकाग्रता का चित्र उनके इस पद मे देखिये।

आली रे मेरे नैनन बान पड़ी।
चित्त चढ़ी मेरे माधुरी मूरति उर विच आन गड़ी।
कब की ठाढ़ी पन्थ निहारूँ, अपने भवन खड़ी॥

कैसे प्रान पिया बिनु राखूँ, जीवन-मूल जड़ी ।
मीरा गिरिधर हाथ बिकानी लोग कहै बिगड़ी ।।

मीरा के प्रियतम थे, वही गिरिधर, जो साकार होते हुए भी निराकार थे, जो अंगों से संयुक्त होने पर भी निरांग थे। मीरा अपने उन्हीं गिरिधर को खोजती थीं, और उन्हीं के वियोग मे विरह के गीतों को छिटकारती थीं। वे ज्यो ज्यों प्रेम के पथ पर आगे बढ़ती थीं, त्यों त्यों उनकी प्यास भी अधिक बढ़ती जाती थी। प्यास इस लिए अधिक बढ़ती जाती थी, कि उनकी आँखें जिसे देखना चाहती थीं, वह उन्हें नही दिखाई देता था। वह उनकी आँखों के सामने अपनी एक स्वर्णच्छवि बिखेर कर उनसे दूर खिसकता जा रहा था, और मीरा उसकी उस स्वर्णच्छवि पर विमुग्ध होकर हाथ फैलाये हुये उसकी ओर खिंची जा रही थीं। मीरा की वह अवस्था एक वियोगिनी मतवाली साधिका की अवस्था थी। मीरा ने अपनी इस अवस्था मे प्रेम को सीमित कर दिया है, वियोग का अन्त कर दिया है। अपनी इस अवस्था में मीरा जब प्रेम और वियोग से लसी हुई आविर्भूत होती है, तब विवश होकर यह कहना पड़ता है, कि मीरा के इस प्रेम और वियोग के पश्चात् कदाचित् कुछ नहीं है। मीरा ने प्रेम और वियोग के अन्तिम तट पर से ही अपने प्रियतम का आह्वान किया है, और आह्वान करते करते वे आनन्द तथा उन्माद की प्रतिमर्ति बन गई हैं। मीरा ने अपने इसी वियोगानन्द मे अपने गीतों

की सृष्टि की है। इसी लिये तो उनके गीतों में उनका हृदय बोलता है, उनके प्राण झंकृत होते हैं, और इसी लिये मीरा विश्व-साहित्य की अमूल्य निधि भी बन सकी है।

मीरा भक्त थी। गिरिधर गोपाल उनके आराध्य देव थे। उन्होंने अपना तन-मन धन सब कुछ उन्हीं के नाम पर निछावर कर दिया था। यह सच है, कि मीरा के गिरिधर कभी व्रज की गोपियों के साकार और मनुष्य रूप मे नायक थे, किन्तु मीरा का गिरिधर साकार होते हुये भी निराकार है, सीमित होते हुये भी असीम है। मीरा को अपने गिरिधर में एक ऐसी ज्योति और एक ऐसा अखण्ड सौन्दर्य दिखाई देता है, जो इस संसार के बाहर एक किसी दूसरे संसार की वस्तु है। मीरा इस नश्वर जगत मे अपने प्रियतम के उस सौन्दर्य के स्थायित्व को समझती हैं; और उस पर वे अपने को लुटा देती हैं। उस सौन्दर्य के आगे मीरा को इस नश्वर जगत में कुछ दिखाई ही नहीं देता। मीरा वियोगिनी हैं, विरहिणी है, किन्तु फिर भी वे आनन्द में. उन्मत्त बनकर गाती हैं। गाती हैं, इस लिये, कि वे उस प्रियतम की विरहिणी हैं, जो असीम है, अनन्त है, अलक्ष्य है, और अप्राप्य है। मीरा को अपने इस प्रियतम की विरहिणी होने पर गर्व है। देखिये, वे किस प्रकार आनन्द से पुलकित होकर कह रही हैं :—

पायो जी मैंने नाम रतन धन पायो।

यहाँ मीरा के विरह में ज्ञान है, एक गंभीर दार्शनिकता

है। यहाँ वे संसार की सीमा पर खड़ी होकर संसार को ललकारती हुई दिखाई देती है। संसार उनकी प्रेम मयी आँखों के लिये तुच्छ है, और तुच्छ हैं, संसार की विलास-वस्तुयें। मीरा अपने उस प्रियतम के लिये, जिसकी ज्योति से सारा संसार आलोकित है, सब को ठुकरा देती है। मीरा इस बात को जानती है, कि उनका प्रियतम 'अलक्ष्य' है, 'अदृश्य है' किन्तु फिर भी वे गिरिधर के रूप में उसे ढूँढती है। कभी २ मीरा ढूँढ़ते-ढूँढ़ते थक भी जाती हैं, और उनके विरह व्यथित हृदय से निकल पड़ता है :—

हेरी मै तो प्रेम दीवाणी, मेरा दरद न जाने कोय।
सूली ऊपर सेज हमारी किस विधि सोणा होय॥

किन्तु फिर भी मीरा निराश नहीं होतीं। उन्हें पूर्ण आशा है, कि उनका प्रियतम उन्हें अवश्य मिलेगा और वे उसी आशा के उन्माद मे प्रेम-पथ पर दौड़ती हुई दिखाई देती हैं। मीरा इस दौड मे अपने प्रियतम के अंग-सौन्दर्य पर नहीं रीझतीं। इसी लिये तो मीरा ने अपने पदों मे कहीं भी अपने प्रियतम के अंग-सौन्दर्य की चर्चा नहीं की है। सूर ने कृष्ण के बाल रूप पर विमुग्ध होकर उनके अंग-सौन्दर्य का वर्णन किया है। इसी प्रकार गोस्वामी तुलसीदास जी भी श्रीराम चन्द्र जी के अंग-सौन्दर्य पर बार-बार अपने को निछावर करते हुये दिखाई देते हैं, किन्तु विरहिणी मीरा के लिये यह सब कुछ नहीं था। मीरा तो अपने गिरिधर के उस सौन्दर्य पर

रीझी हुई थीं, जो अविनश्वर था, और जिसे वे संसार की प्रत्येक वस्तु में ज्योति के रूप मे झलकती हुई देखती थीं। मीरा अपने प्रियतम के इसी सौन्दर्य की उपासिका थीं। इस 'सत्य' 'सौन्दर्य' ने मीरा को इतना विमुग्ध कर लिया था, कि संसार के चारों ओर उसी का व्यापक रूप मीरा को दिखाई देता था। जंगलों मे, पहाड़ों पर, बादलों में, ऋतुओं में, सर्वत्र मीरा को अपने प्रियतम की ही ज्योति दिखाई देती थी। मीरा की प्रेम मयी आँखों ने वास्तव में उस ज्योति के रहस्य को समझ लिया था, जिसे समझने के लिये लोग तपश्चर्या की अग्नि में अपने जीवन की आहुति देते हैं। मीरा के प्राणों ने भली प्रकार यह अनुभव कर लिया था, कि इस 'सत्य' और सौन्दर्य के आगे संसार मे कुछ नही है। नश्वर जगत में यदि किसी की कुछ सत्ता है, तो यही है। इसी लिये मीरा सारे जगत की उपेक्षा करके कटक-पूर्ण पथ पर भी हँस कर दौड़ती हुई दिखाई देती हैं, और इस प्रकार दौड़ती हुई दिखाई देती है कि उनकी प्रगति में ससार की कोई भी शक्ति बाधा नहीं उपस्थित कर सकती। मीरा स्वयं कहती हैं:—

"मेरा कोई नाहीं रोकन हार, मगन होय मीरा चली।"

मीरा ज्ञानी हैं, दार्शनिक हैं, और रहस्य वादिनी। मीरा के पदो मे जिस ज्ञान, जिस दर्शन और जिस रहस्य बाद का प्रास्फुटन हुआ है, वह कबीर को छोड़ कर अन्य किसी भक्त कवि की कविताओं में नहीं पाया जाता। मीरा

इस मार्ग पर बड़े बड़े भक्त कवियों को भी बहुत पीछे छोड़ गई हैं। मीरा का रहस्यवाद इसलिये और भी अधिक महत्त्व-पूर्ण हो गया है, कि उसमे विरह है, पीड़ा है, और साथ ही साथ प्राणों की सगीत है। मीरा न पीड़ित होकर जहाँ दार्शनिक की भाँति टेर लगाई है, वहाँ एक सच्चे रहस्यवाद का स्वरूप खड़ा हो गया है। वहीं इस बात का भी प्रमुख रूप से पता चल जाता है, कि मीरा की पीर संसार के बाहर की पीर थी। उनकी वेदना वह वेदना थी, जिसकी संसार में कोई औषधि ही नहीं। मीरा अपनी इस पीर के बारे मे स्वय कहती हैं:—

दरद की मारी बन बन डोलूँ, वैद मिल्या नहिं कोय।
मीरा की प्रभु पीर मिटै, जब वैद सँवलिया होय॥

मीरा अपनी दार्शनिक व्यथा को प्रगट करने के लिये भाषा और शब्दों के पीछे नही दौड़ती थीं। भावों मे सौन्दर्य उत्पन्न करने के लिए उन्हें कला की भी खोज नहीं थी। प्रेम और विरह से परिपूर्ण मीरा के हृदय में शब्द, भाषा लालित्य और कला के लिये स्थान ही नहीं था। वे अपने पीड़ित और विरही हृदय को बिलकुल ठीक ठीक सीधे-सादे शब्दों के साँचे में ढालती थीं, और इस प्रकार ढालती थीं, कि एक-एक शब्द प्रेम का तार बन कर बजने लगता था, और इस समय भी वही मीरा के पदों में झंकृत होता हुआ सुनाई देता है। मीरा

की यही सर्व श्रेष्ठ कला है, और इसी कला से मीरा स्वयं भी जगत में सर्व श्रेष्ठ बन सकी हैं।

मीरा जोधपुर के राठौर वंश में कुड़की गाँव में उत्पन्न हुई थीं। इनके जन्म सम्वत् के सम्बन्ध में अभी तक कोई निश्चित् मत नहीं स्थिर हो सका है, किन्तु इनका जन्म संवत् १५५५ और संवत् १५६० के मध्य में हुआ होगा। इनके पिता का नाम रत्नसिंह और दादा का नाम रावदूदा जी था। ये अपने माता-पिता की अकेली सन्तान थीं, अतएव इनके लालन-पालन मे प्यार और दुलार को अधिक महत्त्व दिया जाता था।

मीरा जी बाल्यावस्था से ही गिरिधर गोपाल की भक्त थीं। मीरा जी की इस बाल-भक्ति के सम्बन्ध में दो एक कहानियाँ कही जाती है। मीरा जी के जीवन-चरित्र के लेखको ने भी इन कहानियों को विशेष महत्त्व दिया है। मीरा जी गिरिधर गोपाल की ओर कैसे आकर्षित हुईं, इस सम्बन्ध में एक बड़ी रोचक कहानी कही जाती है। लोगों का कहना है, कि एक दिन मीरा के पड़ोस मे एक बारात आई। बारात मे दूल्हे को देख कर मीरा ने अपनी माँ से पूछा, 'माँ' मेरा दूल्हा कौन है? माँ के मुख से निकल पड़ा, कि गिरिधर गोपाल। लोगों का कहना है, कि बस, उसी समय से मीरा के हृदय में गिरिधर के लिये प्रेम उत्पन्न हो गया, और वे गिरिधर गोपाल की मिट्टी की मूर्ति बना कर उसी के चरणों मे अपने हृदय का प्रेम निछावर करने

लगी। इसी के आगे एक और किम्बदन्ती कही जाती है, और वह यह है, कि मीरा की बाल्यावस्था मे एक दिन उनके घर एक साधु आया। साधु के पास गिरिधर गोपाल की एक मूर्ति थी। मीरा ने किसी प्रकार उस मूर्ति को देख लिया और फिर उसके लिये साधु से आग्रह किया। किन्तु साधु ने मीरा की न सुनी। सुनते हैं, इस पर गिरिधर गोपाल ने स्वप्न में स्वयं साधु से अपनी मूर्ति मीरा को सौंप देने के लिये कहा था।

जो हो, किन्तु घटनाओं और तथ्यों के आधार पर यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है, कि मीरा जी बचपन में ही गिरिधर गोपाल की भक्त थीं। ज्यों ज्यों वे जीवन-क्षेत्र में आगे बढ़ती गईं, त्यों त्यों उनकी भक्ति भी अधिक प्रबल होती गई। संसार की परिस्थितियों ने उनकी इस भक्ति को और भी अधिक चमका दिया। १५१६ ई० में मीरा जी का विवाह राणा साँगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज जी के साथ कर दिया गया। किन्तु कुछ ही दिनों के पश्चात् भोजराज जी मर गये, और वे विधवा हो गईं। इस घटना के बाद ही मीरा जी एक प्रबल साधिका के रूप में संसार मे प्रगट होती हैं। संसार उनकी दृष्टि में तुच्छसे भी अधिक तुच्छ दिखाई देता है, और वे गिरिधर के प्रेम में रँग जाती हैं। वे गिरिधर के प्रेम में नाचतीं, गाती और साधुओं के साथ करताल की झंकार करती हैं। तत्कालीन राजा विक्रमाजीत सिंह जी को

मीरा का यह जीवन अधिक बुरा मालूम हुआ, और उन्होंने मीरा के जीवन पर अधिक अत्याचार भी किये। यहाँ तक कि मीरा की मृत्यु के लिये उन्हें विषपान भी कराया गया, किन्तु मीरा जी अपने पथ से न हटीं। वे बराबर गिरिधर के प्रेम-पथ पर आगे बढती गईं और इतना बढ़ गई, कि राज-प्रसाद को छोड़ कर वृन्दावन चली गईं, और वहीं उन्होंने अपने प्रियतम के विरह मे अपने को उत्सर्ग कर दिया।

मीरा जी ने अपने विरह-गीतों और पदों का निर्माण करना कब से आरभ किया, इस सम्बन्ध मे कोई बात निश्चित् रूप से नहीं कही जा सकती। एक विद्वान लेखक का कथन है, कि मीरा जी विवाह के पूर्व ही गीतों की रचना करने लगी थीं। जो हो, किन्तु यह तो सत्य है, कि मीरा जी जब ससुराल मे आईं, तब उनकी कविता-कला प्रस्फुटित हो चली थी। पति की मृत्यु के पश्चात् और राणा के अत्याचारों के समय तो उसमें मीरा का हृदय भी बोलने लगा था। मीरा के पदों और गीतो को एकत्र करके देखने से मीरा की कविता के क्रम-विकास का पता भली भाँति चल जाता है। ज्यों ज्यों मीरा की पीर बढ़ती गई है, त्यों त्यों उनकी कविता भी जागृत होती गइ है और अन्त म इतनी जागृत हो उठी है, कि दार्शनिक बन गई है।

मीरा के निम्नांकित पदों में उनकी भक्ति, प्रेम, विरह और दार्शनिकता को देखिये:—

[१]

मेरे गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई ।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई ॥
तात मात भ्रात पूत अपनो नहिं कोई ।
छाँडि दई कुल की कानि करिहै कहा कोई ॥
सन्तन ढिग बैठि बैठि लोक लाज खोई ।
चुनरी के किये टूक ओढ़ि लीन्ह लोई ॥
मोतिन की हार डारि गुंज-माल पोई ।
अँसुवन जल सींचि-सींचि प्रेम-वेलि बोई ।
अबतो वेलि फैल गई, आनँद-फल होई ॥
दूध की मथनिया बड़े प्रेम सो विलोई ॥
माखन जब काढ़ि लियौ छाछ पियै कोई ॥
आई मै भक्ति काज जगत जोहि मोही ।
मीरा के गिरिधर प्रभु तारौ अब मोही ॥

[२]

पायो जी मैंने नाम रतन धन पायो ।
वस्तु अमोलक दी मेरे सत गुरु किरपा कर अपनायो ।
जनम जनम की पूँजी पाई, जग में सभी खोवायो ॥
खरचै नहिं कोई चोर न लेवै, दिन-दिन बढत सवायो ।
सत की नाव खेवटिया सतगुरु भवसागर तर आयो ।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर हरख हरख जस गायो ॥

[३]

दरस बिन दूखन लागे नैन ।
जब ते तुम बिछुरे पिय प्यारे कबहुँ न पायो चैन ।
सबद सुनत मेरी छतियाँ काँपै, मीठे लागैं बैन ।
एक टकटकी पन्थ निहारूँ, भई छमासी रैन ॥
विरह-विथा काँसू कहूँ सजनी वह गई करवत ऐन ।
मीरा के प्रभु कब हो मिलोगे, दुख मेटन, सुख दैन ॥

[४]

तेरा कोई नहिं रोकन हार मगन होय मीरा चली ।
लाज सरम कुल की मर्यादा सिर से दूर करी ॥
मान-अपमान दोऊ धर पटके निकसी हूं ज्ञान-गली ।
ऊँची अटरिया, लाल किवड़िया, निरगुन सेज बिछी ।
पँच रंगी झालर सुभ सोहै, फूलन फूल कली ॥
बाजू बन्द कडूला सोहै, सेंदुर माँग भरी ।
सुमिरन थाल हाथ मे लीन्हा सोभा अधिक भली ॥
सेज सुख मणा मीरा सोवै, सुभ है आज घरी ।
तुम जावो राणा घर अपणे मेरी तेरी नाहिं सरी ॥

[५]

हेरी मै तो प्रेम दीवाणी मेरा दरद न जाने कोय ।
सूली ऊपर सेज हमारी किस विधि सोणा होय ।
गगन मडल मे सेज पिया की, किस विधि मिलणा होय ।

घायल की गति घायल जाने, की जिन लाई होय ॥
जौहरी की गति जौहरी जानै की जिन जौहर होय ।
दरद की मारी बन बन डोलूँ वैद मिल्या नहिं कोय ।
मीरा की प्रभु पीर मिटैगी, जब बैद सँवलिया होय ॥

[६]

रमैया मैं तो थाँरे रँग राँती ।

औरों के पिया परदेश बसत हैं, लिख लिख भेजें पाती ।
मेरा पिया मेरे हृदय बसत है, गूँज करूँ दिन राती ॥
चूवा चोला पहिर सखी री मैं झुरमुट रमवा जाती ।
झुरमुट से मोंहि मोहन मिलिया, खोल मिलूँ गल बारी ॥
और सखी मद पा पी माती, मैं बिना पियाँ मद माती ।
प्रेम मठी को मैं मद पीयो, छकी फिरूँ दिन राती ॥

[७]

घड़ी एक नहिं आवणे, तुम दरसन बिन मोय ।
तुम हो मेरे प्राण जी, कासूँ जावण होय ॥
धान न भावै, नींद न आवै, विरह सतावै मोय ।
घायल सी घूमत फिरूँ रे मेरा दरद न जाने कोय ॥
दिवस तो खाय गमायो रे, रैण गमाई सोय ।
प्राण गमायो झूरता रे, नैण गमाई रोय ॥
जो मैं ऐसा जाणती रे प्रीति किये दुख होय ।
नगर ढिंढोरा फेरतो रे, प्रीति करो मत कोय ॥

पंथ निहारूँ, डगर बुहारूँ, ऊबी मारग जोय।
मीरा के प्रभु कब रे मिलोगे, तुम मिलियाँ सुख होय॥

[८]

सखी मेरी नींद नसानी हो।
पिय को पंथ निहारत सिगरी रैन बिहानी हो॥
सब सखियन मिलि सीख दई मन एक न मानी हो।
बिन देखे कल नाहिं परत जिय ऐसी ठानी हो॥
अंग छीन, व्याकुल भई, मुख पिय-पिय बानी हो।
अन्तर वेदन विरह की, वह पीर न जानी हो॥
ज्यों चातक घन को रटै, मछरी जिमि पानी हो।
मीरा व्याकुल विरहिनी, सुध-बुध बिसरानी हो॥

[९]

नैनन बनज बसाऊँ, जो मैं साहिब पाऊँ री।
इन नैनन मेरा साहिब बसता, डरती पलक न नाऊँ री।
भृकुटि महल में बना झरोखा, वहाँ से झाँकी लगाऊँ री॥
सुन्न महल में सुरत जमाऊँ, सुख की सेज बिछाऊँ री।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर बार बार वलि जाऊँ री॥

[१०]

मेरा बेड़ा लगाय दी जो पार प्रभु जी अरज करूँ छूँ।
या भव मे मैं वहु दुख पायो संसा सोग निवार।
अष्ट करम की तलब लगी है, दूर करो दुख ।भार॥
यों संसार सब वह्यो जात है, लख चौरासी धार।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर आवागमन निवार॥

प्रवीणराय

प्रवीणराय की कविता न तो समाज के चित्र को लेकर उपस्थित होती है, और न किसी व्यापक आदर्श को। किन्तु उसमें प्रवीण राय के हृदय की हिलोर अवश्य है। उनकी उस हिलोर में वासना और विलास भावना की गन्ध है। गन्ध ही नहीं, वल्कि कहना तो यह चाहिये, कि उनकी काव्य-कल्पना इसके आगे सुदूर तक जा ही नहीं सकी। उनका प्रमुख विषय है, शृंगार। किन्तु शृंगार में भी उन्होंने एक भावना को ही अधिक महत्त्व दिया है, और उनकी एक भावना है, उनका वह विलास। उनकी इस विलास-भावना में उनकी जीवन की छाप है। उन्होंने अपने जीवन के अनुकूल ही अपनी काव्य-कल्पना को भी बनाने का प्रयत्न किया है, और इसमें सन्देह नहीं, कि वे इस कार्य में वहुत कुछ अंशों में सफल हुई हैं।

यह सच है, कि प्रवीण राय की कविता में उच्च और व्यापक कल्पना के दर्शन नहीं होते किन्तु यह भी सच है, कि उनकी रचना जोरदार, सुसंगठित और भाव मयी है। इसमें

एक प्रवाह है, एक गति है, एक शृंखला है। उनकी कविता की शब्द योजना, और भावों को परिस्फुटित करने वाली उनकी उपमाओं को देखकर यह कहना पड़ता है, कि प्रवीणराय काव्य के अंगों से भली भाँति परिचित थीं, और उनमे भावों को प्रगट करने की पर्याप्त क्षमता भी थी। प्रमाण के लिये उनके निम्नांकित छन्द का अवलोकन कीजिये:—

कमल कोक श्रीफल मँजीर कलधोत कलश हर।
उच्च मिलन अति कठिन दमक बहु स्वल्प नीलधर॥
सरवन शरवन हेय मेरु कैलाश प्रकाशन।
निशि वासर तरुवरहिं कांस कुन्दन दृढ़ आसन॥
इमि कहि प्रवीन जल थल अपक अविध भजित तिय गौरि संग।
कलि खलित उरज उलटे सलिल, इन्दु शीश इमि उरज ढग।

कितनी सुसंगठित और सुन्दर शब्द योजना है; और यह उस समय की एक हिन्दी कवियित्री की शब्द योजना है, जब स्त्रियाँ अधिकांशतः साहित्य-ज्ञान से अपरिचित थी। प्रवीण राय की यह अपनी एक बहुत बड़ी विशेषता है। उनकी इस विशेषता की प्रशंसा महाकवि केशवदास जी ने भी की है। केशवदास जी ने प्रवीणराय की प्रशंसा मे ही 'कवि प्रिया' नामक एक ग्रन्थ की भी सृष्टि की है, और उसके बहुत से छन्द प्रवीणराय ही से सम्बन्ध रखते हैं। प्रवीणराय केशवदास जी की शिष्या भी थीं। इसीलिये प्रवीणराय की शब्द-योजना

पर महाकवि केशव की भी कुछ कुछ छाप दिखाई देती है।

प्रवीणराय ओड़छा नरेश महाराज इन्द्रजीत सिंह की वेश्या थी। वह इन्द्रजीतसिंह को अधिक प्यार करती थी। किन्हीं कारणों वश उसे अकबर के दरबार मे जाना पड़ा। प्रवीणराय की एक कविता से प्रगट होता है, कि वह अकबर के दरबार में जाना नहीं चाहती थी, किन्तु फिर भी उसे विवश होकर अकबर के दरवार में जाना पड़ा। अकबर के दरवार मे जाने के पूर्व उसने महाराज से जो निवेदन किया था, उसमें उसके हृदय की विवशता को देखिये :—

आई हौं बूझन मंत्र तुम्हैं निज स्वासन सौं सिगरी मति गोई।
देह तजौं, कि तजौं कुल कानि हिये न लजौं लजि हैं सब कोई॥
स्वारथ औ परमारथ को पथ चित्त विचारि कहौ तुम सोई।
जामे रहै प्रभु की प्रभुता अरु मोर पतिव्रत भंग न होई॥

प्रवीणराय अकवर वादशाह के दरवार में जाकर रहने लगी। वहाँ उसने अपनी कविताओं से वादशाह का अच्छा मनोरंजन किया। किन्तु प्रवीणराय का चित्त वहाँ न लगता था। वह पुनः ओड़छा लौट आना चाहती थी। एक बार उसने बड़ी ही चतुराई से अकवर वादशाह को दो छन्द सुनाये। उन छन्दों का अकवर के ऊपर ऐसा प्रभाव पड़ा, कि उसने अपनी इच्छा के विरुद्ध उसे महाराज के पास भेज दिया। प्रवीणराय के वे दोनों छन्द इस प्रकार हैं :—

[१]

अंग अनंग नहीं कछु संभु सुकेहरि लंक गयन्दहिं घेरे।
भौंह कमान नहीं मृग लोचन खंजन क्यों न चुगै तिलि तेरे॥
है कच राहु नहीं उदै इन्दु सुकीर के बिम्बन चोंचन तेरे।
कोऊ न काहू सों रोस करै सुडरै डर साह अकब्बर तेरे॥

[२]

विनती राय प्रवीन की, सुनिये साह सुजान॥
जूठी पतरी भखत हैं, बारी-वायस, स्वान॥

यहाँ हम प्रवीणराय के कुछ छन्दों को उद्धृत कर रहे हैं। उनसे पाठकों को प्रवीणराय की सुगठित शब्द-योजना और काव्य-कल्पना का भली भाँति परिचय प्राप्त हो जायगा :—

[१]

नीकी घनी गुन नारि निहारि नेवारि तऊ अँखियाँ ललचाती।
जान अजानन जो रित दीठि बसीठि के ठौरन औरन हाती॥
आतुरता पिय के जिय की लखि प्यारी प्रवीन बहै रस माती।
ज्यों ज्यों कछू न बसाति गोपाल की त्यों त्यों फिरै घर में मुसुकाती॥

[२]

सीतल सरीर टार, मंजन कै घन सार,
अमल अँगोछे आछे मन में सुधारि हौं।
देहौं न अलक एक लागन पलक पर,
मिलि अभिराम आछी तपन उतारि हौं।

कहत 'प्रवीणराय' आपनी न ठौर पाय,
सुन वाम नैन या बचन प्रति पारि हौं।
जब हीं मिलेगे मोहि इन्द्रजीत प्रान प्यारे,
दाहिनो नयन मूँदि तोहीं सौ निहारि हौं ॥

[२]

मान के बैठी है प्यारी 'प्रवीन' सो देखै बनै नहिं जात बनायो।
आतुर ह्वै अति कौतुक सों उत लाल चले अति मोद बढ़ायो॥
जोरि दोऊ कर ठाढ़े भये करि कातर नैन सों सैन बतायो।
देखत बेंदी सखी की लगी, मित हेर्यो नहीं इतयों बहरायो ॥

—:०:—

ताज

वह एक विशेष प्रकार का युग था। नन्दलाल की बाँसुरी ने भारत के कोने-कोने में अपना माधुर्य विखेर दिया था। नन्दलाल की बाँसुरी बज कर बन्द हो चुकी थी, किन्तु उसकी झंकार अब भी लोगों के कानों में हो रही थी, और अब भी हो रही है, और चिरकाल तक होती रहेगी। साधारण मनुष्य उसे केवल एक बाँस की बाँसुरी की झंकार समझते हैं, किन्तु जिनके हृदय में आँखें होती है, और जो दार्शनिक-ज्ञान के श्रवण से उस झंकार को सुनते हैं, उन्हें उसमें एक दूसरा ही रस मिलता है। वह रस मिलता है, जो संसार के बाहर की वस्तु है, और जो दुर्लभ है, जो अमूल्य है। महात्मा सूरदास नन्दलाल की बाँसुरी के इसी रस पर रीझे थे। मीरा इसी के लिये मतवाली हुई थीं, और रसखान ने इसी के ऊपर अपने को निछावर कर दिया था। ताज भी उसी पर लुटी हुई दिखाई देती हैं।

ताज एक भक्त महिला थीं। वे जाति की मुसलमान थीं। किन्तु उनका हृदय जाति-पांति की सीमा से बहुत दूर था। उनकी जो कुछ कवितायें प्राप्त हो सकी हैं, उनसे यह पता चलता है, कि उनका हृदय विशाल था. और उस विशाल हृदय में ज्ञान की व्यापक भावनायें थीं। उन्हें कृष्ण में एक दूसरी ज्योति का दर्शन होता था। कृष्ण की बाँसुरी में उनके कान एक दूसरे ही प्रकार का स्वर सुनते थे। वे कृष्ण को 'सत्य शिवं सुन्दरम्' के रूप में संसार-सीमा पर खड़ा होकर जगत और जगत के मनुष्यों का कल्याण करता हुआ देखती थीं। इसीलिये वे कृष्ण और कृष्ण की बाँसुरी पर, रीझ कर, अपना सर्वस्व निछावर करने के लिये तैयार रहती थीं। जाति, सांसारिक धर्म, कलमा, कुरान सब कुछ। उन्हे इन समस्त वस्तुओं से कृष्ण बहुत ऊपर दिखाई देते थे।

ताज वैष्णव मतावलम्बिनी थीं, और वे ईश्वर के साकार रूप की उपासना करती थीं। किन्तु उनका कृष्ण साकार होते हुये भी निराकार था। उन्हें अपने साकार ... में उस ज्योति का दर्शन होता था, जिसका ... था। ताज ने अपने एक कवित्त मे अपनी ... परिचय भी दिया है। यों तो सभी भक्त ... और सगुण उपास्य ... ' की ज्यो... हैं, किन्तु ताज इस ... और भी आ... देती हैं। वे एक मुस... होकर ज...

अपना सर्वस्व निछावर करती हुई दिखाई देती है, तब यह कहना ही पड़ता है, कि कृष्ण की सगुण और साकार उपासना में उनका हृदय निगु ण उपासना का आनन्द प्राप्त करता था।

ताज की कविता बहुत सीधी-सादी, किन्तु हृदय के भावों से गुंथी हुई है। न तो उसमे शब्दों का भण्डार है, और न भावों की गहराई, किन्तु सीधे-सादे शब्दों में उसमें ताज के हृदय की विशालता अवश्य छिपी हुई है। ताज ने कृष्ण के प्रति जहां अपना प्रेम प्रगट किया है, वहॉ भक्ति के साथ ही साथ उनके हृदय की दृढ़ता है, और इस दृढ़ता का चित्र उन्होंने अपनी कविता मे बड़ी ही दृढ़ता के साथ चित्रित किया है। ताज की सीधी-सादी कविता की यही एक बहुत बड़ी विशेषता है। अपनी इस विशेषता की शक्ति से ताज की कविता सीधी-सादी होने पर भी मानव-हृदय को छूती हुई दिखाई देती है।

ताज कौन थी, कहाँ और कब उत्पन्न हुईं, इनके माँ-बाप का क्या नाम था, यह तो अभी अन्धकार के गर्भ मे है। किसी का कहना है, इनका जन्म सं० १६५२ मे हुआ, और किसी का कथन है कि सं० १७०० के लगभग। हिन्दी में तो इनके सम्बन्ध में कोई पुस्तक मिलती नहीं, किन्तु गुजराती की एक पुस्तक के आधार पर इनका जन्म सम्वत् १७०० के लगभग माना जा सकता है। स्वर्गीय गोविन्द गिल्ला भाई के निम्नांकित पत्र से ताज के जीवन पर अच्छा प्रकाश पड़ता है:—

"ताज नाम की एक मुसलमान स्त्री-कवि करौली में हो गईं

है। वह नहा-धोकर मन्दिर में नित्य-प्रति भगवान का दर्शन करती थी, और इसके पश्चात् भोजन ग्रहण करती थी। एक दिन वैष्णवों ने उसे विधर्मी समझ कर मन्दिर मे दर्शन करने से रोक दिया। इससे ताज उस दिन उपवास करके मन्दिर के आँगन में ही बैठी रह गई और कृष्ण के नाम का जप करती रही। जब रात हुई, तब ठाकुर जी स्वय मनुष्य के रूप मे भोजन का थाल लेकर ताज के पास आये और कहने लगे तूने आज जरा सा भी प्रसाद नही खाया। ले अब इसे खा। कल प्रातः काल जब सब वैष्णव आवे, तब उनसे कहना कि तुम लोगों ने मुझे कल ठाकुर जी का प्रसाद और दशन का सौख्य नहीं दिया, इससे आज रात को ठाकुर जी स्वयं मुझे प्रसाद दे गये हैं और तुम लोगों को संदेश कह गये हैं, कि ताज को परम वैष्णव समझो। इसके दर्शन और प्रसाद ग्रहण करने में रुकावट कभी मत डालो। नहीं तो ठाकुर जी तुम लोगों से नाराज हो जायँगे। प्रातः काल जब सब वैष्णव आये, तो ताज ने सारी बातें उनसे कह सुनाई। ताज के सामने भोजन का थाल रक्खा देख कर वे अत्यन्त चकित हुये। वे सभी वैष्णव ताज के पैर पर गिर पड़े और क्षमा-प्रार्थना करने लगे। तब से ताज प्रतिदिन भगवान का दर्शन करके प्रसाद ग्रहण करने लगी। पहले ताज मन्दिर मे जाकर ठाकुर जी का दर्शन कर आती थी, तब और दूसरे वैष्णव दर्शन करने जाते थे।"

"ताज कवि परम वैष्णव और महा भगवद् भक्त थी उन्हीं

ठाकुर जी की कृपा से यह कवि हो गई। जब मैं करौली गया था, तब अनेक वैष्णवों के मुख से मैंने यह बात सुनी थी। वहीं मैंने इनकी अनेक कवितायें भी सुनी। उसी समय मैंने इनकी कितनी ही कवितायें लिख भी ली थीं। ताज की दो सौ कवितायें मेरे हाथ की लिखी हुई मेरे निजी पुस्तकालय में हैं।"

ताज के जीवन के सम्बन्ध मे बस इतना ही पता चलता है। किन्तु यह तो निश्चित् है कि वे कृष्ण-प्रेम मे दीवानी थीं, और उनकी सारी कविता कृष्ण-भक्ति के रंग मे रँगी हुई है। इनके पदों की भाषा से पता चलता है, कि ये पंजाब प्रान्त की रहने वाली थीं। मथुरा के कविराज चौबे नवनीत का कथन है:—ताज एक मुसलमान स्त्री कवि थी, और पंजाब की रहने वाली थी। कृष्ण से प्रेम हो जाने पर कविता की ओर इनका ध्यान हो गया था, कृष्ण के प्रेम में रँगी हुई ताज की कुछ कवितायें देखिये:—

[१]

सुनो दिलजानी, मेरे दिल की कहानी तुम,
दस्त ही बिकानी, बदनामी भी सहूँगी मैं।
देव पूजा ठानी हौं निवाज हूँ भुलानी तजे,
कलमा कुरान सारे गुन न गहूँगी मैं।
श्यामला सलोना सिरताज सिर कुल्ले दिये,
तेरे नेह दाग में निदाग ह्वै रहूँगी मैं।

नन्द के कुमार, कुरबान ताणी सूरत पर,
हौं तो तुरकानी हिन्दुआनी ह्वै रहूंगी मैं ॥

[२]

कालिन्दी के तीर नीर-निकट कदम्ब कुंज,
मन कछु इच्छा कीनी सेज सरोजन की ।
अन्तर के यामी, कामी, कवँल के दल लेके,
रची सेज तहाँ शोभा कहा कहौं तिनकी ।
तिहिं समै 'ताज' प्रभु दम्पति मिले की छवि,
बरन सकत कोऊ नाहीं वाहि छिनकी ।
राधे की चटक देखे, आँखियाँ अटक रहीं,
मीन'को मटक नाहिं साजत वा दिन की ॥

[३]

चैन नहीं मन मे न मलीन सुनैन परे जल में न तई है ।
ताज कहे परयंक यों बाल ज्यों चंपकी माल विलाय गई है ॥
नेकु विहाय न रैन कछू यह जान भयानक भारि भई है ।
भौन में भानु समान सुदीपक अंगन मे मनो आगि दई है ॥

—:०:—

शेख

गोस्वामी तुलसीदास, मीरा, और महात्मा सूरदास जी ने हिन्दी-जगत में काव्य की जो धारा बहाई थी, वह आगे चल कर मन्द पड़ गई। मन्द ही नहीं पड़ गई, बल्कि कहना तो यह चाहिये, कि उसका एक प्रकार से बिलकुल रूप ही बदल गया। काव्य की दृष्टि से गोस्वामी तुलसीदास और महात्मा सूरदास जहाँ कल्पना के अनन्त जगत मे विचरते हुये दिखाई देते हैं, वहाँ उनके पश्चात् के कवि एक सीमा के भीतर ही दौड़ लगाकर रह जाते हैं। सूरदास और मीरा इत्यादि ने जिस नन्दलाल को अपनी दार्शनिक आँखों से देखकर व्यापक कल्पना की सृष्टि की थी, उन्हीं को पश्चात् के कवियों ने एक साधारण नायक का स्वरूप प्रदान करके हिन्दी साहित्य में लाकर खड़ा कर दिया है। देव, विहारी, मतिराम, इत्यादि इसी प्रकार के कवि थे। इसमे सन्देह नहीं, कि कृष्ण काव्य के रचयिताओं में इन कवियों की प्रमुखता है, और इसमे भी सन्देह नहीं कि इन्होंने अपने विषयो का प्रतिपादन बड़ी ही गहराई के साथ

किया है, किन्तु साथ ही इसमे भी सन्देह नही, कि इन्होंने कृष्ण और राधिका को एक साधारण नायक नायिका का स्वरूप प्रदान करके कविता के असीमित सिद्धान्तों को सीमा में बद्ध कर दिया। कृष्ण और राधिका को सामने रख कर इन महा-कवियों ने शृङ्गार रस की जो धारा बहाई, उसमे बहुत से कवि बह गये, और यह धारा तब तक अविच्छिन्न गति से आगे बढ़ती गई, जब तक इन्हीं की तरह का कोई ऐसा महाकवि हिन्दी मे नहीं उत्पन्न हुआ, जिसमें कि कविता की धारा को मोड़ देन की शक्ति हो।

उक्त महाकवियों ने शृङ्गार रस की जो धारा बहाई थी, उसी मं शेख भी बह गई थीं। शेख ने भी शृङ्गार रस को ही अपनी कविता का आधार-रस बनाया है। इन्होंने कृष्ण और राधिका को एक साधारण नायक नायिका की दृष्टि से देखा है, और इसी की दृष्टि से उनके वियोग और संमिलन का चित्रण भी किया है। इनकी कविता मे न पीड़ा है, न कसक है। न उल्लास है, न उन्माद है। इसीलिये इनकी कविता-कल्पना अधिक सीमित भी हो गई है। किन्तु यह शेख का दोप नहीं, वह तो कविता-कल्पना का सोमित युग ही था। बडे बड़े महा-कवियों की कविता-कल्पना जब उस सीमित युग से आगे नहीं जा सकी, तब फिर शेख की बात ही क्या ?

शेख की अधिकांश कविताओं मे नायक नायिकाओं ही का वर्णन पाया जाता है। नायक नायिकाओं के वर्णन में शेख यदि

किसी से आगे नहीं, तो बहुत पीछे भी नहीं दिखाई देती। इनके स्त्री हृदय ने कहीं-कहीं नायिकाओं के वर्णन मे बड़े अनूठे चमत्कार का प्रदर्शन किया है। नायक नायिकाओं के प्रेम को जागृत करने के लिये शेख ने जिन उक्तियों का आश्रय लिया है, वे सजीव होने के साथ ही साथ चमत्कार-पूर्ण भी हैं। भले ही शेख की कविता मे सीमित कल्पना हो; किन्तु शेख में अपने हृद्गत भावों को कविता में प्रस्फुटित करने की सफल शक्ति अवश्य थी। शेख ने जहाँ जिसका वर्णन किया है, सफलता के साथ चमत्कारिक ढंग से किया है।

सम्वत् १७१२ के लगभग हिन्दी मे आलम नाम के एक बहुत बड़े कवि हो गये है। शेख इन्हीं की स्त्री थीं। विवाह के पूर्व दोनों विभिन्न धर्म के मानने वाले थे। आलम सनाढ्य ब्राह्मण थे, और शेख रँगरेजिन थी। दोनों में प्रेम पैदा हो गया। आलम शेख पर विमुग्ध होकर के ही इस्लाम मे दीक्षित हो गये। आलम और शेख के प्रेम का सूत्रपात कैसे हुआ, इस सम्बन्ध में साहित्य के इतिहास मे निम्नांकित घटना पाई जाती है:—

एक बार आलम ने शेख के पास अपनी पगड़ी रँगने के लिये भेजी। शेख ने जब पगड़ी खोली, तब उसमें उसे एक छोटा सा काग़ज़ मिला। कागज़ पर लिखा था:—

कनक छरी सी कामिनी, काहे को कटि छीन।

आलम ने शेख के सौन्दर्य पर विमुग्ध होकर यह पद

लिखा था, या नहीं, इस सम्बन्ध में कुछ कहा नहीं जा सकता। किन्तु शेख ने इस अधूरे दोहे को पूरा करके पगड़ी ही के द्वारा आलम के पास भेज दिया। शेख का इसकी पूर्ति मे बनाया हुआ दूसरा चरण इस प्रकार है:—

कटि को कंचन काटि विधि, कुचन मध्य धरि दीन।

आलम को जब यह पूर्ति मिली, तब वे बहुत प्रसन्न हुये; और शेख पर फिदा हो गये। इतने फिदा हो गये, कि उसी के लिये मुसलमान हो गये। मुंशी देवी प्रसाद का कहना है, कि आलम ने दोहे का प्रथम चरण नहीं, बल्कि कविता के तीन चरण शेख के पास भेजे थे। मुंशी जी के कथनानुसार आलम के भेजे हुये तीन चरण इस प्रकार हैं:—

"प्रेम रँग पगे जगमगे जगे जामिनि के,
जोबन की जोति जगि जोर उमगत हैं।
मदन के माते, मतवारे ऐसे घूमत हैं,
झूमत है झुकि झुकि झंपि उघरत हैं।
आलम सो नवल निकाई इन नैननि की,
पाँखुरी पदुम पै भँवर थिरकत है।"

और शेख ने चौथे चरण की पूर्ति इस प्रकार की थी:—

"चाहत है, उड़िवे को देखत मयंक मुख,
जानत हैं रैनि ताते ताहि में रहत हैं।"

जो हो, शेख आलम की स्त्री थीं और उनकी कविता का

काव्य विषय श्रृङ्गार था। नीचे के कवित्तों में उनके श्रृङ्गार और नायक नायिका का वर्णन देखिये:—

[१]

कीनी चाहौ चाहिली नवोढ़ा एकै बार तुम,
एक बार जाय तिहि छलु डरु दीजिये।
'सेख' कहै आवन सुहेल सेज आवै लाल,
सीखत सिखैगी मेरी सीख सुनि लीजिये।
आवन को नाम सुनि सावन किये है नैन,
आवन कहै सु कैसे आइ जाइ छीजिये।
बरबस बस करिबे को मेरो बस नाहिं,
ऐसी बैस कहौ कान्ह कैसे बस कीजिये॥

[२]

सुनि चित चाहै जाकी किंकिनी की झनकार,
करत कलासी सोइ गति जु बिदेह की।
'सेख' भनि आजु है सुफेरि नहिं काल्ह जैसी,
निकसी है राधे की निकाई निधि नेह की।
फूल की सी आभा सब सोभा लै सकेलि धरी,
फूलि ऐहै लाल भूलि जैहै सुधि गेह की।
कोटि कवि पचैं, तऊ बरनि न पावै फवि,
वेसरि उतारे छवि वेसरि के वेह की॥

[३]

जागन दै जोन्ह सीरी लागन दै रात जैसे,
जात सारी सेत में संघात की न जाति है।

अथये की भीर परी साथ लीजै मोसी नारि,
आतुरी न होइ यह चातुरी की खानि है।
घूँघट ते 'सेख' मुख जोति न घटैगी छिनु,
झीनों पट न्यारिये झलक पहिचानि है।
तू तौ जानै छानी पै न छानी या रहैगी बीर,
छानी छवि नैनन की काको लोहू छानि है।

[४]

नेह सों निहारि नाहु नेकु आगे कीने बाहु,
छांहियों छुवत नारि नाहियों करति है।
प्रीतम के पानि पेलि आपनी भुजै सकेलि,
धरकि सकुचि हियौ गाढ़ौ कै धरति है।
'सेख' कहि आधे बैना बोलि कर नाचे नैना,
हा हा करि मोहन के मनहिं हरति है।
केलि के अरम्भ खिन खेल के बढ़ायबे को,
प्रौढ़ा जो प्रवीन सो नवोढ़ा ह्वै ढरति है!

रसिक बिहारी

रसिक बिहारी साधारण कोटि की कवियित्री थीं। इनकी कविता का प्रमुख विषय शृंङ्गार है। इन्होंने भी अपने समकालीन कवियों की तरह शृंगार ही का वर्णन किया है। नायक नायिका के रूप में जहाँ इन्होंने राधा-कृष्ण का चित्रण किया है वहाँ भी एक साधारण ही कोटि की भावना के दर्शन होते हैं। मीरा और ताज की तरह इनकी कविता में भक्ति-भावना तो नहीं है, किन्तु इन्होंने राधा-कृष्ण के पारस्परिक प्रेम का अच्छा वर्णन किया है, और उस वर्णन मे शृङ्गार की ही विशेष प्रधानता है।

रसिक बिहारी का वास्तविक नाम 'बनी ठनी जी' था। ये महाराज नागरीदास जी की शिष्या थीं। महाराज नागरीदास जी अठारहवीं शताब्दी में हिन्दी के एक भक्त कवि हो गये हैं। नागरीदास जी से ही इन्होंने कविता करनी सीखी थी। ये भक्त थीं, किन्तु आश्चर्य है, कि इनकी कविता में भक्ति का पुट नहीं है। इनकी भक्ति-भावना मे भी शृङ्गार का ही पुट है।

कहीं कहीं श्रृङ्गार-वर्णन अधिक हृदय स्पर्शी और मधुर है। नीचे की कविताओं से इनकी काव्य-कल्पना का उक्त परिचय प्राप्त कीजिए:—

[१]

धीरे झूलो री राधा प्यारी जी।

नवल रंगीली सबै झुलावत गावत सखियाँ सारी जी।

फरहरात अंचल चल चंचल लाज न जात सँभारी जी।

कुंजन ओट दुरे लखि देखत प्रीतम रसिक बिहारी जी।

[२]

कुंज पधारो रंग-भरी रैन।

रंग भरी दुलहिन रँग भरे पिया श्याम सुन्दर सुख दैन।

रंग भरी सेज रची जहाँ सुन्दर रंग भर्‌यो उलहत मैन॥

रसिक विहारी प्यारी मिलि दोउ करौ रंग सुख-चैन॥

[३]

रत नारी हो प्यारी अँखड़ियाँ।

प्रेम छकी रस-बस अलसाणी जाणि कमल की पांखड़ियाँ।

सुन्दर रूप लुभाई गति मति हौं गई ज्यूं मधु माखड़ियाँ।

रसिक विहारी वारी प्यारी कौन बसी निसि काँखड़िया।

[४]

ये वाँसुरिया वारे ऐसो जिन बतरावरे।

यों बोलिये, अरे घर बसे लाजनि दबि गई हायरे।

हौं धाई या गैलहिं सों रे नैन चल्यौ धौं जायरे।
रसिक विहारी नॉव पायकै क्यों इतनो इतरायरे।

[५]

कैसे जल लाऊं मैं पनघट जाऊँ।

होरी खेलत नन्द लाड़िलो क्यों कर निबहन पाऊं।
वे तो निलज फाग मदमाते हौं कुल-बधू कहाऊं।
जो छुवें अंचल रसिक विहारी धरती फार समाऊं।

[६]

होरी होरी कहि बोले सब ब्रज की नारि।

नन्द गाँव बरसानो हिलि मिलि गावत इत उत रस की गारि
उड़त गुलाल अरुण भयो अम्बर चलत रंग पिचकारि कि धारि।
रसिक विहारी भानु-दुलारी नायक संग खेलें खेलवारि।

—:०:—

सहजोबाई

भक्ति-आकाश पर चमकने वाले तारों में सहजो भी एक वह प्रकाशवान ज्योति हैं जिसे भक्त लोग बड़े प्यार से देखा करते हैं। भारतवर्ष मे ऐसा कोई भी साधु-सन्त न होगा, जो सहजो के नाम को न जानता हो, और जिसके ओठों पर सहजो के विरचित पद बार-बार न आते हों। ईश्वर-प्रेम का प्याला पीकर अनेक साधकों ने अपने भक्ति-आदर्श से संसार को चमत्कृत कर दिया है, किन्तु सहजो के वैराग्य मे कुछ दूसरा ही स्वाद मिलता है। सहजो वैराग्य में समाविष्ट सी हो गई हैं। इस प्रकार समाविष्ट हो गई हैं, कि उनमे और वैराग्य में कुछ विशेष अन्तर ही नहीं ज्ञात होता। उनकी यह संलग्नता और उनकी यह आत्म विस्मृति उनके पदों और वानियों में भी स्पष्ट दृष्टि-गोचर होती है। वे जहाँ प्रेम, वियोग और वैराग्य का चित्रण करती हैं, वहाँ ऐसा ज्ञात होता है, कि उन वानियों के भीतर से स्वयं सहजो बाई ही बोल रही हैं। देखिए:—

प्रेम दिवाने जो भयो, नेम धरम गयो खोय।
सहजो नर नारी हँसै, वा मन आनँद होय॥

सहजो की भक्ति बड़ी ऊँची थी। उन्होंने ईश्वर-प्रेम का वह आन्तरिक पहलू अपनी आँखों से देख लिया था, जिसे देखने के पश्चात् और कुछ देखना शेष नहीं रह जाता। उनकी यह पूर्णता उनके पदों से भली भाँति प्रगट हो रही है। सहजो के पदों में साकार और निराकार, दोनों प्रकार की उपासनाओं का महत्व है। इन दोनों प्रकार की उपासनाओं के अतिरिक्त सहजो ने एक और भी भक्ति-प्रथा चलाई है, और उनकी वह भक्ति-प्रथा है गुरु की उपासना। यद्यपि सहजो के पूर्ववर्ती कुछ भक्त कवियों ने भी बार बार 'सत गुरु' और 'गुरु महिमा' का नाम लिया है, किन्तु किसी ने डंके की चोट पर यह नहीं कहा कि:—

गुरु बिन मारग न चले, गुरु बिन लहै न ज्ञान।
गुरु बिन सहजो धुन्ध है, गुरु बिन पूरी हान॥

इसी लिए सहजोबाई अपने गुरु चरणदास जी को ईश्वर के तुल्य समझती थीं। उनकी उपासना, उनकी आराधना सब कुछ ईश्वर के रूप मे अपने गुरु के लिए थी। सहजोबाई ने अपने पदों मे गुरु महिमा को ही विशेष महत्त्व प्रदान किया है। उनकी धारणा थी कि संसार में गुरु ही सब कुछ है। सच्चे गुरु के अभाव मे न तो ज्ञान प्राप्त हो सकता है, और न भक्ति की सीधी राह ही मिल सकती है। सहजोबाई अपने गुरु चरण दास जी की महिमा प्रगट करती हुई कहती हैं:—

[१]

सखी री आज जनमें लीला-धारी।
तिमिर भजैगो, भक्ति खिड़ेगी, परायन नर नारी ॥
दरसन करते आनँद उपजै, नाम लिये अघ नासै।
चरचा मे सन्देह न रहसी, खुलि है प्रबल प्रगासै ॥
बहुतक जीव ठिकानो पे हैं आवागमन न होई।
जम के दण्ड दहन पावक की तिन कूँ मूल निकोई ॥
होइ है जोगी प्रेमी ज्ञानी, ब्रह्म रूप ह्वै जाई।
चरण दास परमारथ कारन गावै सहजो बाई ॥

[२]

सखी री आज जनम लियो सुख दाई।
डूसर कुल में प्रगट हुए हैं, बाजत अनँद बधाई ॥
भादों सुदी तीज दिन मंगल सात घड़ी दिन आये।
सम्बत सत्रह साठ हुए तब।सुभ समयो सब पाये ॥
जै जै कार भयो मधि गाऊँ मात पिता मुख देखौ।
जानत नाहि न कौन पुरुष हैं, आये है नर भेखौ ॥
संग चलावन अगम पन्थ कूँ, सूरज भक्ति उदय को।
आप गुपाल साध तन धार्यो, निहचै मों मन ऐसो ॥
गुरु शुकदेव नाँव धरि दीन्हौ, चरन दास उपकारी।
सहजो बाई तन मन वारे, नमो नमो बलिहारी ॥

यह है सहजो बाई की गुरु भक्ति और उनकी गुरु महिमा ये अपनी गुरु-भक्ति ही की झाँका से ईश्वर का दर्शन करती थीं।

एक ओर ये ईश्वर के रूप में गुरु की साकार उपासना करती हैं और दूसरी ओर निर्गुण राग भी अलापती हैं। मीरा की भाँति इनका भी निर्गुण वाद अधिक उच्च और व्यापक है। नीचे की पंक्तियों में इनके निर्गुणवाद को देखिये:—

नाम नहीं औ नाम सब, रूप नहीं सब रूप।
सहजो सब कछु, ब्रह्म है, हरि परगट हरी रूप॥
है अखण्ड व्यापक सकल, सहज रहा भर पूर।
ज्ञानी पावै निकट ही, मूरख जानै दूर॥

सहजोबाई का जन्म कब हुआ, और ये कब मरीं, इस सम्बन्ध में कुछ विशेष पता नहीं चलता। कुछ लोगों का अनुमान है, कि इनका जन्म सम्वत् १८०० के लगभग हुआ होगा। जिस प्रकार इनके जन्म-मृत्यु के सम्बन्ध मे अभी तक कुछ विशेष पता नहीं चल सका, उसी प्रकार इनके जीवन की समस्त घटनायें भी लुप्त प्राय हैं। केवल इतना ही पता चलता है, कि ये राजपुताने के एक प्रसिद्ध ढूसर कुल मे उत्पन्न हुई थीं। इनके माता-पिता का क्या नाम था, और ये किस परिस्थिति में पाली पोसी गईं, इसका भी पता नहीं चलता। इनके पदों से इतना अवश्य प्रगट होता है कि जीवन के प्रारंभिक काल में ही इनके हृदय में वैराग्य की ज्योति जागृत हो उठी थी और वह इस भाँति बढ़ी, कि इन्होंने अपना विवाह तक न किया और घर से निकल कर महात्मा चरणदास जी के पास चली गईं।

चरणदास जी इनके गुरु थे, और ये उन्हें ईश्वर के तुल्य समझती थीं।

सहजोबाई के निम्नांकित पदों में उनकी गुरु भक्ति, वैराग्य और ईश्वर-प्रेम-भावना को देखिये:—

[१]

राम तजूँ पै गुरु न विसारूँ, गुरु के सम हरि कूँ न निहारूँ ॥
हरि ने जन्म दियो जग माहीं। गुरु ने आवा गमन छुटाहीं ॥
हरि ने पाँच चोर दिये साथा। गुरु ने लई छुटाय अनाथा ॥
हरि ने रोग भोग उरझायो। गुरु जोगी करि सबै छुटायो ॥
हरि ने कर्म मर्म भरमायो। गुरु ने आतम रूप लखायो ॥
फिरि हरि वध मुक्ति गति लाय। गुरु ने सब ही भर्म मिटाये ॥
चरन दास पर तन-मन वारूँ। गुरु न तजूँ हरि को तजि डारूँ ॥

[२]

'सहजो' कारज जगत के, गुरु बिन पूरे नाहिं।
हरि तो गुरु बिन क्या मिलैं, समझ देख मन माहि ॥
परमेसर सूँ गुरु बड़े, गावत वेद पुरान।
'सहजो' हरि घर मुक्ति है, गुरु के घर भगवान ॥
'सहजो' यह मन सिलगता, काम-क्रोध की आग।
भली भयो गुरु ने दिया, सील छिमा की बाग ॥
ज्ञान दीप सत गुरु दियो, राख्यौ काया कोट।
साजन बसि दुर्जन भजे, निकसि गई सब खोट ॥

'सहजो' गुरु दीपक दियौ, रोम रोम उजियार।
तीन लोक द्रष्टा भयो, मिट्यो भरम अँधियार॥
चिऊँटी जहाँ न चढ़ि सकै, सरसों न ठहराय।
सहजो कूँ वा देश मे, सत गुरु दई बसाय॥

[३]

अचरज जीवन जगत में, मरिबो साँचा जान।
'सहजो' अवसर जात है, हरि सूँ ना पहिचान॥
मन बिछुरन यों होइगो, ज्यों तरुवर सूँ पात।
'सहजो' काया प्रान यो, मुख से ती ज्यों बात॥
यह मन्दिर यह नारि है, यह धन यह सन्तान।
तेरो न 'सहजो' कहै, काहे करत गुमान॥
स्वास खजानो जातु है, ताकी सोधी नाहिं।
'सहजो' खर्ची का रह्यो, कर हिसाब घर माहिं॥
'सहजो' नौबत स्वास की, बाजत है दिन-रैन।
मूरख सोवत है महा, चेतन कूँ नहिं चैन॥
आगे भये सो जा चुक, तू भी रहै न कोय।
'सहजो' पर कूँ क्या झुरै, अपना ही कूँ रोय॥

[४]

नया पुराना होय ना, घुन नहिं लागे जासु।
सहजो, मारा न मरै, भय नहिं व्यापै तासु॥
सहजो उपजै न मरै, सद बासी नहिं होय।
रात दिवस तामें नहीं, सीत उरन नहिं सोय॥

ताके रूप अनन्त हैं, जाके नाम अनेक ।
ताके कौतुक बहुत हैं, सहजो नाना भेष ॥
आग जलाय सकै नहीं, सस्तर सकै न काटि ।
धूप सुखाय सकै नहीं, पवन सकै नहि आटि ॥
आदि अन्त ताके नहीं, मध्य नहीं तेहि माहिं ।
वार पार नहिं सहजिया, लघू दीर्घ भी नाहिं ॥
परलय में आवै नहीं, उतपति होय न फेर ।
ब्रह्म अनादि सहजिया, घने हिराने हेर ॥
रूप नाम गुन सूं रहित, पाँच तत्त सूँ दूर ।
चरन दास गुरु ने कही, सहजो छिमा हजूर ॥

[५]

बाबा काया नगर बसावौ ।
ज्ञान दृष्टि सूँ घट मे देखौ, सुरति निरति लौ लावौ ॥
पाँच मारि मन बस कर अपने, तीनों ताप नसावौ ।
सत सन्तोष गहै दृढ़ सेती, दुर्जन मारि भजावौ ॥
सील छिमा धीरज कूँ धारौ, अनहद बंब बजावौ ।
पाप बानिया रहन न दीजै, धरम सजार लगावौ ॥
सुबस बास हो वै जब नगरी, वैरी रहै न कोई ।
चरन दास गुरु अमल बनायो, सहजो संभलो सोई ॥

[६]

'सहजो, जा घट नाम है, सो घट मंगल रूप ।
राम बिना धिक्कार है, सुन्दर धनवँत भूप ॥

कूकर ज्यों भूसत फिरै, तामस मिलवाँ बोल ।
घर बाहर पुर रूप है, बुधि रहै डावाँ डोल ॥
नीच लोभ जा घट बसै, झूठ कपट सूँ काम ।
बौरायो चहुँ दिसि फिरै, 'सहजो' कारन दाम ॥
मोह मिरग काया बसै, कैसे उबरै खेत ।
जो बोवै सोई चरै, लगै न हरि सूं हेत ॥
भक्त हेत हरि आइया, पिरथी भार उतारि ।
साधन की इच्छा करी, पापी डारे मारि ॥
जोगी पावै जोग सूँ, ज्ञानी लहै विचार ।
'सहजो' पावै भक्ति सूँ, जोग-प्रेम आधार ॥

दयाबाई

सहजोबाई की तरह दयाबाई का भी स्त्री भक्त कवियों में प्रमुख स्थान है। सहजो की कविता का स्रोत जिस स्थान से फूटा है, वहीं से दयाबाई की भी कविता का स्रोत आगे बढ़ता हुआ दिखाई देता है। दोनों की कविता का उद्गम स्थल एक ही है, और वह है, संसार से विरक्त होकर गुरू के चरणों का ध्यान। दयाबाई भी उन्हीं महात्मा चरणदास जी की शिष्या थीं, जिनकी सहजो बाई थीं। सहजोबाई और दयाबाई दोनों की कविता का एक ही आदर्श है, और दोनों की कविता बहुत कम अन्तर के साथ भक्ति-संसार में प्रवाहित होती हुई दिखाई देती है।

दयाबाई की वानियों, पदों और दोहों का अध्ययन करने से यह पता चलता है, कि उनके हृदय मे सांसारिक मनोभाओं की पर्याप्त चोट लगी थी। उनके हृदय में अधिक पीड़ा थी, और वह पीड़ा थी, ईश्वर-प्रेम की। ईश्वर-प्रेम ने उनके हृदय के तार-तार को झन झना दिया था, और वे उसी की झन

झनाहट को लेकर स्थान-स्थान पर व्याकुलता के राग अलापती थीं। वे ईश्वर प्रेम और उसकी पीडा मे इतनी डूबी हुई दिखाई देती हैं, कि उन्हें उसके आगे ससार की क्या, अपना भी ध्यान नहीं है। उन्होंने अपनी इस आत्म-विस्मृति का निम्नांकित पंक्तियों में अच्छा चित्रण किया है:—

दया प्रेम प्रगट्यो तिन्है, तन की तनि न संभार।
हरि रस मे माते फिरें गृह वन कौन विचार॥
पंथ प्रेम को अटपटो, कोई न जानत वीर।
कै मन जानत आपनो, कै लागि जेहि पीर॥

यह दयाबाई की एक अपनी अनुभूति है, और इसी अनुभूति को उन्होंने एक आदर्श के रूप में संसार मे उपस्थित कर दिया है। और वास्तव म वह आदर्श बन भी गई है। आदर्श बन गई है इस लिये, कि वह सच्ची अनुभूति है, ज्ञान-सीमा के सन्निकट की भावना है। वास्तव मे जिनके हृदय मे ईश्वर के प्रेम की पीड़ा उत्पन्न होती है, और जो हरि-प्रेम का आसव ओठों से लगा लेते हैं, उन्हे समस्त संसार अधिक तुच्छ सा दिखाई देने लगता है। नश्वर और नगण्य संसार मे उन्हे यदि किसी की सत्ता दिखाई देती है, तो अपने प्रियतम की, अपने आराध्य देव की। वे नश्वर जगत से मुह मोड़ कर उसी की गीत गाते हैं, और उसी में मिल जाने का प्रयत्न करते हैं। यही तो वह प्रयत्न था, जिसने मीरा और सहजो को पागल बना दिया था।

दयाबाई मे ईश्वर के प्रति जहाँ अनन्य प्रेम है वहाँ संसार के प्रति अधिक विराग भी है। यों तो ईश्वर-प्रेमियों का ससार से विरक्त होना एक स्वाभाविक सी बात है। किन्तु दयाबाई के वैराग्य में एक दार्शनिक भावना है, और वह इसी लिए अधिक सम्मान की वस्तु है। वे संसार से विरक्त बन कर गाते गाते अधिक दार्शनिक हो उठी हैं, और निर्गुण वाद के सन्निकट खड़ी हुई दिखाई देती हैं। उनके हृदय में ज्ञान की अपूर्व ज्योति है, और उन्होंने उसी ज्योति से संसार के बाहर का भी बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त कर लिया है। वे स्वयं कहती हैं:—

ज्ञान रूप को भयो प्रकास।
भयो अविधा तम को नास॥
सूझ पर्‌यो निज रूप अभेद।
सहजै मिट्यो जीव को खेद॥
जीव-ब्रह्म अन्तर नहिं कोय।
एकै रूप सर्व घट सोय॥
जगत विवर्त सूँ न्यारा जान।
परम अद्वैत रूप निर्वान॥
विमल रूप व्यापक सब ठाईं।
अरध, उरध महँ रहत गुसाईं॥
महा सुद्ध साच्छी चिद् रूप।
परमातम प्रभु परम अनूप॥

निराकार निरगुन निरवासी ।
आदि निरंजन अज अविनासी ॥

कितना असीमित भक्ति-ज्ञान है। दयाबाई की यह उक्त कविता ही इस बात को प्रमाणित करती है, कि उन्होंने जगत और जगत की नश्वरता मे 'अमर' रूप होकर रहने वाले ईश्वर के तत्त्व को भली भाँति समझ लिया था। किन्तु दयाबाई की तरह सभी के हृदय में तो ज्ञान-ज्योति होती नहीं। फिर वे किस प्रकार संसार के कष्टों से विमुक्त होकर 'अमरत्त्व' को प्राप्त कर सकते हैं। दयाबाई ऐसे मनुष्यों के लिये मार्ग भी बताती हैं, और कहती हैं, कि संसार मे साधु और गुरु की सेवा ही सब कुछ है। साधु और गुरू की सेवा से ही ईश्वर प्रसन्न होते है, और मनुष्य सांसारिक कष्टों से विमुक्त हो सकता है। निम्नांकित पंक्तियों में देखिये, वे क्या कह रहीं हैं :—

साध रूप हरि आप हैं, पावन परम पुरान ।
मेटैं दुविधा जीव की, सब का करैं कल्यान ॥
कलि केवल संसार में, और न कोउ उपाय ।
साध संग हरि नाम बिनु, मन की तपन न जाय ॥
सतगुरु सम कोउ है नहीं, या जग में दातार ।
देत दान उपदेश सों, करैं जीव भव पार ॥
गुरू किरपा बिन होत नहिं, भक्ति भाव विस्तार ।
जोग जज्ञ जप तप 'दया' केवल ब्रह्म विचार ॥

दयाबाई का जन्म मेवाड़ के डेहरा नामक स्थान मे हुआ था। ये सहजो की गुरू बहन और महात्मा चरणदास जी की स्वजातीया थीं। चरणदास जी का जन्म भी इसी गाँव में हुआ था। दयाबाई के जन्म संवत् के सम्बन्ध मे लोगों के तरह-तरह के अनुमान हैं। किसी का कहना है, इनका जन्म संवत् १७५० में हुआ, और किसी का कथन है, कि संवत् १७५५ में। कोई कोई दोनों सम्वतों के बीच के किसी सम्बत् को इनका जन्म संवत् बताते है। खोज से यह पता चला है, कि इनका जन्म संवत् १७५० के आस-पास हुआ होगा। इनके गुरू के नाम को छोड़ कर इनके और किसी सम्बन्धी का पता नहीं चलता। ये महात्मा चरणदास जी ही के साथ साथ रहा करती थीं, और उन्हीं के सतसंग से इनके हृदय में वैराग्य का प्रादुर्भाव हुआ। एक गुजराती के लेखक ने इनके सम्बन्ध में लिखते हुये लिखा है:—"दयाबाई को बाल्यावस्था से ही हरि-प्रेम का चस्का लग गया था। गाँव मे जहाँ कहीं हरि-कीर्तन होता, जहाँ कहीं साधु-सन्तों की मण्डली आती, ये तुरन्त वहाँ पहुँच जाया करतीं और बड़े प्रेम से उनकी बातें सुना करती थीं। इसी भाँति धीरे-धीरे इनके हृदय म भक्ति और वैराग्य की जड़ प्रबल हो उठी, और ये अपने गाँव को छोड़ कर चरणदास जी के साथ दिल्ली मे जाकर रहने लगीं।" जो हो, किन्तु यह तो निर्विवाद है, कि चरणदास जी उनके गुरू थे, और ये उनके साथ साथ दिल्ली में रहती थीं। इनके बनाये हुये [illegible] ग्रन्थ

का भी पता चलता है। उसका नाम है, दया-बोध दयाबाई ने सम्वत् १८१८ मे इसका निर्माण किया। इन्होने स्वयं इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में लिखा है:—

सम्बत ठारा सै समै, पुनि ठारा गये बीति।
चैत सुदी तिथि सातवीं, भयो ग्रन्थ सुभ रीति॥

प्रयाग के बेलवेडियर प्रेस ने इनके नाम से एक और पुस्तक प्रकाशित की है। उस पुस्तक का नाम है, 'विनय मालिका। किन्तु दयाबोध और विनय मालिका के पदो मे अधिक अन्तर है। 'दया-बोध' मे दया बाई ने अपने नाम की छाप 'दया' और 'दया कुँवरि' रक्खा है, किन्तु उसमे 'दयादास' एक दूसरा ही नाम मिलता है। सम्भव हो, विनय मालिका में दयाबाई के भी कुछ पद हों, किन्तु अधिकांश पद दयादास नामक किसी दूसरे भक्त साधु के प्रतीत होते है।

निम्नांकित कविताओ से दया बाई की भक्ति-वैराग्य और प्रेम का परिचय प्राप्त कीजिये:—

[१]

'दया कुंवरि' या जक्त मे, नहीं रह्यो फिर कोय।
जैसे बास सराय की, तैसो यह जग होय॥
जैसो मोती ओस को, तैसो यह संसार।
विनसि जाय छिन एक मे, 'दया' प्रभू उर धार॥
तात मात तुम्हरे गये, तुम भी भये तयार।
आज काल्ह मे तुम चलो, दया होहु हुसियार॥

[२]

गुरु बिन ज्ञान ध्यान नहि होवै।
गुरु बिनु चौरासी मन जोवै॥
गुरु बिनु राम भक्ति नहिं जागै।
गुरु बिनु असुभ कर्म नहिं त्यागै॥
गुरु ही दीन दयाल गोंसाईं।
गुरु सरनै जो कोई जाई॥
पलटै करै काग सूं हंसा।
मन को मेटत है सब संसा॥
गुरु है सागर कृपा निधाना।
गुरु है ब्रह्म रूप भगवाना॥
हानि लाभ दोउ सम करि जानै।
हृदै ग्रन्थ नीकी विधि मानै॥
दै उपदेश करै भ्रम नासा।
दया देत सुख सागर वासा॥
गुरु को अहि निशि ध्यान जो करिये।
विधिवत सेवा मे अनुसरिये॥
तन मन सूं आज्ञा मे रहिये।
गुरु आज्ञा बिन कछु न करिये॥

[३]

हरि रस माते जे रहैं, तिनको मतो अगाध।
त्रिभुवन की सम्पति दया, तृन सम जानत साध॥

हँसि गावत रोवत उठत, गिरि गिरि परत अधीर।
पै हरि रस चस को 'दया', सहै कठिन तन पीर॥
विरह विथा सूँ हूँ विकल, दरसन कारन पीव।
'दया' दया की लहर कर, क्यों तल फावौ जीव॥
प्रेम-पुंज प्रगटै जहाँ, तहाँ प्रगट हरि होय।
'दया' दया करि देत है, श्री हरि दरशन सोय॥

[४]

साध साध सब कोउ कहै, दुर्लभ साधू सेव।
जब संगति है साध की, तव पावे सब भेव॥
साधू विरला जक्त मे हर्ष सोक ते हीन।
कहत सुनत कूँ बहुत हैं, जन जग आगे दीन॥
साध संग जग मे बड़ो, जो करि जानै कोय।
आधो छिन सत संग को, कलमष डारे खाय॥
कोटि लच्छ व्रत नेम तिथि, साध सग मे होय।
यिषम व्याधि सब मिटत है, सान्ति रूप सुख जोय॥

[५]

मनसा बाचा करि दया, गुरु चरनों चित लाव।
जग समुद्र के तरन कूँ, नाहिन आन उपाय॥
जे गुरु कूँ वन्दन करै, दया प्रीति के भाव।
आनँद मगन सदा रहैं, तिर विधि ताप नसाव॥

नित प्रति वन्दन कीजिये, गुरु कूँ सीस नवाय ।
दया सुखी कर देत है, हरि स्वरूप दरसाय ॥
या जग में कोउ है नहीं, गुरु सम दीन दयाल ।
सरना गत कूँ जानि कै, भले करै प्रति पाल ॥

सुन्दरकुंवरि बाई

सुन्दर कुंवरि बाई कृष्ण-काव्य के रचयिताओं मे अपना एक साधारण स्थान रखती हैं। इन्होंने कृष्ण और राधिका के ऊपर अपनी अधिकांश कवितायें लिखी है, और उनमें शृङ्गार की भावना है। शृङ्गार का वर्णन भी बहुत ही साधारण सा है। कहीं-कहीं नायक-नायिकाओ का चित्रण चमत्कार-पूर्ण हो गया है। यह सब होते हुए भी यह कहना पड़ता है, कि बाई जी ने काव्य-रचना की अच्छो प्रतिभा पाई थी। छन्दों के भीतर प्रतिभा की ज्योति झलमलाती हुई भी दिखाई देती है। किन्तु किन्हीं कारणों वश उसका विकास न हो सका और वह अपनी एक चमक दिखा करके ही बुझ गई।

बाई जी का जन्म संवत् १७९१ मे दिल्ली मे हुआ था। इनके पिता का नाम राजसिंह था। राजसिंह जी रूपनगर और कृष्णगढ़ के अधिपति थे। बाई जी का विवाह राघवगढ के उत्तराधिकारी बलदेवसिंह जी के साथ हुआ था। बाई जी मे बाल्यावस्था से ही कविता के लिए लगन थी। अपनी लगन ही

के कारण इन्होंने प्रतिकूल परिस्थितियों मे काव्य ग्रन्थो की रचना की है। प्रतिकूल परिस्थितियाँ इस लिये, कि इनके पति देव का जीवन बहुत दिनों तक शत्रुओं के साथ आक्रमणों के कारण अधिक अस्त-व्यस्त-सा रहा है। यदि बाई जी को अनुकूल परिस्थितियाॅ प्राप्त होतीं तो इसमें सन्देह नहीं कि इनकी प्रतिभा का अधिक विकास होता और आज यहाँ हमे इनके सम्बन्ध मे कुछ दूसरे ही शब्द लिखने पडते।

बाई जी ने कई पुस्तको की रचना भी की है। इनकी पुस्तकों के नाम ये है :—(१) रस पुज (२) गोपी महात्म्य, (३) प्रेम सम्पुट, (४) भावना प्रकाश, (५) नेह-विधि रचना, (६) संकेत युगुल (७) रग भर, (८) राम रहस्य, (९) वृन्दावन गोपी महात्म्य, (१०) सार-सग्रह। इतनी पुस्तकों का निर्माण ही इस बात को प्रमाणित करता है, कि बाई जी ने अच्छी प्रतिज्ञा भाई थी। उनकी इस प्रतिभा को उनकी रचित निम्नांकित कविताओं मे भी देखिये:—

[१]

मेरो प्रान-सजीवन राधा।
कब तो वदन सुधाधर दरसै यों अँखियन हरै बाधा॥
ठमकि ठमकि लरिकौंही चालन आव सामुहे मेरे।
रस के वचन पियूप पोप के कर गहि बैठहु मेरे॥
रहसि रंग की भरी उमंगति ले चल सङ्ग लगाय।
निभृत नवल निकुंज विनोदन विलसत सुख-दरसाय॥

रंग महल संकेत जुगल कै टहलिन करत सहेली।
आज्ञा लहौं रहौं तहँ तट पर बोलत प्रेम पहेली॥
मन-मंजरी जु कीन्हों किंकर अपनावहु किन वेग॥
सुन्दर कुवरि स्वामिनी राधा हित की हरौं उद्वेग॥

[२]

कहत श्याम मेरे नही तुम बिन कोऊ आन।
प्रानहु है प्यारी प्रिया काहि करत हौ मान॥
काहि करत हौ मान चलहु पिय सङ्ग विहारौ।
राधा राधा मंत्र नाम वे रटत निहारौ॥
नायक नन्द कुमार सकल सुभ गुन के सागर।
तिन सो मान निवार बहुत बिनवत सुनि नागर॥

[३]

श्री वृषभानु-सुता मन-मोहन जीवन प्रान, अधार पियारी।
चन्द्र मुखी सुनि हारन आतुर चातुर चित्र चकोर बिहारी॥
जा पद-पंकज के अलि लोचन श्याम के लोभित सोभित भारी।
हौं बलि हारी सदा पग पै नव नेह नवेली सदा मतवारी॥

••••••••••

प्रतापकुंवरि बाई

प्रतापकुंवरि बाई मे ज्ञान और वैराग्य की उच्च भावनाये है। आध्यात्मिक जगत की सूक्ष्म विवेचना के साथ साथ जगत की नश्वरता का चित्र भी इन्होने अच्छा खीचा है। सत्य, और असत्य, नश्वरता और अमरता, दोनों का इनका एक साथ चित्रण अत्यन्त सराहनीय है। अपनी आध्यात्मिक शक्ति के बल पर इन्होंने उन दिनों जोधपुर मे भक्ति का डंका पीट दिया था। यद्यपि ये मीरा की भाँति विरागिनी बन कर जंगलो मे न भटकीं, तथापि इनके हृदय मे मीरा से कम वैराग्य न था। ये अपने गार्हस्थ जीवन की झाँकी से ही वैराग्य के सूक्ष्म तत्वों को भली भाँति परखतीं और अपने आराध्यदेव मे मिल जाने का प्रयत्न करती थीं। इनकी उपासना मीरा के 'साकार' और 'निराकार' की भाँति किसी अदृश्य लोक मे न जा सकी थी। इनका प्रियतम, इनका आराध्यदेव इनके गार्हस्थ जीवन ही में विद्यमान था। ये उसी की पूजा करतीं, और उसी मे जगत की नश्वरता का पाठ पढ़ती थीं। यों तो मर्यादा पुरुषोत्तम

श्रीरामचन्द्र जी इनके आराध्यदेव थे, किन्तु ये उनका दर्शन अपने सांसारिक पति मे ही करती थीं। देखिये, वे स्वयं कहती हैं:—

पति समान नहीं दूजा देवा।
तातैं पति की कीजै सेवा ॥
पति परमातम एक समाना ।
गावै सब ही वेद-पुराना ॥
धरम अनक कहे जग माही।
तिय के पतिव्रत सम कछु नाहीं ॥

सांसारिक पति मे अखण्ड ज्योति का दर्शन करने के साथ ही साथ इनके हृदय में ससार के प्रति विराग भा अधिक था। इन्होंने अपने उस विरागी हृदय को निम्नांकित पक्तियो मे बड़े अच्छे ढंग से प्रगट किया है:—

होरि या रंग खेलन आओ।
इला पिंगला सुख मणि नारी ता सँग खेल खिलाओ।
सुरत पिचकारी चलाओ।
काँचो रंग जगत को छाँड़ो, साँचो रंग लगाओ।
बाहर भूल कबौं मत जावो, काया-नगर बसाओ ॥
तबै निरभै पद पाओ।
पाँचो उलट धरे घर भीतर अनहद नाद बजाओ।
सब बकवाद दूर तज दीजै, ज्ञान-गीत नित गाओ ॥
पिया के मन तब ही भाओ।

तीन ताप तीन गुण त्यागो, संसा सोक नसाओ ।
कहै प्रताप कुंवरि हित चित सों फेर जनम नहिं पाओ ॥
जोत में जोत मिलाओ ।

इनकी उक्त पंक्तियों से पता चलता है, कि ये अपनी इस सांसारिक आसक्ति मे कितने ऊँचे वैराग्य का दर्शन करती थीं। ये अपने कर्त्तव्य की इस झाँकी से ही, उसी परब्रह्म परमात्मा को देखती थीं, जिसे देखने के लिये कबीर ने 'निराकार' की झाँकी तैयार की थी। इनकी समस्त कविताओ मे इनके इसी जीवन की छाप है। कविता की पंक्तियो म भी ये ईश्वर के साकार और निराकार रूप को पति मे ही खोजती हुई दिखाई देती हैं। इनकी दृष्टि मे, इनका पति, ईश्वर के सगुण और निर्गुणवाद से भी अधिक ऊँचा है। इन्होने अपनी इस आन्तरिक विशुद्ध भावना का बड़ी ही सफलता के साथ चित्रण किया है।

इनका जन्म संवत् १८७४ के लगभग जोधपुर रियासत के जाखण नामक गाँव मे हुआ था। इनके पिता का नाम गोयन्ददास जी था। गोयन्द-दास जी भाटिया वंशी क्षत्री थे। बाल्यावस्था में ही प्रताप कुंवरि बाई की प्रतिभा का परिचय मिलने लगा था। बाई जी जब कुछ सयानी हुई, तब इनका विवाह मारवाड़ के महाराज मानसिंह के साथ हो गया। ये अपने पति को ईश्वर के तुल्य समझती थीं, और बड़ी ही भक्ति-भावना के साथ अपना जीवन व्यतीत करती थीं।

सम्वत् १९४३ में इनका देहावसान हो गया। इन्होंने कई पुस्तकें भी लिखी है, जिनके नाम ये हैं:-१ ज्ञान प्रकाश, २ ज्ञान सागर, ३ प्रताप पचीसी, ४ प्रेम सागर, रामचन्द्र नाम महिमा, ६ राम गुण सागर, ७ रघुवर स्नेह लीला, ८ रघुवर जी के कवित्त, ९ भजन पद हरिजस, १० हरिजस गायन, ११ श्रीरामचन्द्र विनय, १२ प्रताप विनय, १३ राम प्रेम सुख सागर, १४ राम सुयश पच्चीसी।

निम्नांकित कविताओं से बाई जी की भक्ति और उनकी प्रतिभा का अच्छा परिचय प्राप्त होता है:—

[१]

होरी खेलन की सत भारी।
नर-तन पाय अरे भज हरि को मास एक दिन चारी।
अरे अब चेत अनारी।
ज्ञान-गुलाल अबीर प्रेम करि, प्रीत तणी पिचकारी।
लास उसास राम रँग भर-भर, सुरत सरीरी नारी॥
खेल इन संग रचा री।
उलटो खेल सकल जग खेलै, उलटो खेलै खिलारी।
सत गुर सीख धार सिर ऊपर सत संगत चल जारी॥
भरम सब दूर गुमारी।
ध्रुव प्रहलाद विभीषण खेले, मीरा करमा नारी।
कहै प्रताप कुंवरि इमि खेलै सो नहिं आवै हारी॥
सीख सुन लीजै अनारी।

[२]

धर ध्यान रटो रघुवीर सदा,
धनुधारी को ध्यान हिये धर रे।
पर पीर में जाय कै वेग परौ,
कर तें सुभ सुकृत को कर रे।
तर रे भवसागर को भजि कै,
लजि कै अघ-औगुण ते डर रे।
परताप कुंवारि कहै पद पंकज,
पाव घरी मत बीसर रे।

[३]

अवधपुरी घुमडि घटा रही छाय।
चलत सुमन्द पवन पुरवाई नभ घन घोर मचाय॥
दादुर मोर पपीहा बोलत दामिनि दमकि दुराय।
भूमि निकुंज सघन तरुवर मे लता रही लिपटाय॥
सरजू उमगत लेत हिलोरैं, निरखत सिय रघुराय।
कहत प्रतापकुंवरि हरि ऊपर वार वार वलि जाव॥

[४]

आस तो काहू की नाहिं मिटी,
जग मे भये रावण से बड़ जोधा।
संतित सूर-सुयोधन से,
वल से नल से रत वादि विरोधा॥

केते भये नहिं जाय बखानत,
जूझ मुये सब ही करि क्रोधा।
आस मिटै परताप कहैं,
हरिनाम जपेर निचारत बोधा॥

चन्द्रकला

चन्द्रकला की कविता का प्रमुख विषय कृष्ण काव्य है। कृष्ण और राधिका का नायक-नायिका के रूप मे इन्होंने चित्रण किया है। किन्तु इनके चित्रण मे पूर्ववर्ती कवियों की भाँति सृङ्गार का अधिक पुट नही है। इनका सलज्ज नारी हृदय सृङ्गार वर्णन मे एक सीमा ही के भीतर रह जाता है। शृङ्गार का वर्णन करते करते इनमें एक प्रकार का सकोच-सा जागृत हो जाता है, और ये वहीं रुक जाती है। शृङ्गार को प्रस्फुटित करने के लिये इन्होंने जिन उक्तियो और उपमाओं का आश्रय लिया है, वे चमत्कार-पूर्ण होने के साथ ही साथ नवीन है। निम्नांकित पंक्तियों में इनकी नवीन और चमत्कारिक उक्तियाँ देखिये:—

नेकौ एक केश की न समता सुकेशी लहै,
नैनन के आगे लागे कमल रूमाल ची।
तिल सी तिलोत्तमा हू रति हू रती सी लागे,
सनमुख ठाढ रहैं लाल हित लालची॥

'चन्द्रकला' दान आगे दीन कल्प बृक्ष लागे,
वैभव के आगे लागे इन्द्र हू कुदाल ची।
धन्य धन्य राधे वृजभान की दुलारी तोहिं,
जाके रूप आगे लगे चन्द्रमा मसाल ची॥

चन्द्रकला मे प्रतिभा है, । उक्ति का चमत्कार है, और है भावों को व्यंजित करने की शक्ति, चमत्कार के साथ ही साथ माधुर्य की भी कमी नही है। सुगठित और सुन्दर शब्द-योजना ने इनकी कविता को हृदय स्पर्शिता का गुण प्रदान कर दिया है।

इनका जन्म सवत् १९२३ के आस पास हुआ था। ये बूँदी के कवि और दीवान कविराज राव गुलाव सिंह की दासी की पुत्री थी। एक स्थान पर चन्द्रकला ने अपने इस परिचय को प्रगट करते हुए कहा है —

बरस पच दस की वय मेरी।
कवि गुलाब की हूँ मैं चेरी॥
बालहिं ते कवि संगति पाई।
तात तुक जोरन मोहि आई॥

चन्द्रकला के इस आत्म परिचय से यह प्रगट होता है, कि जीवन के प्रारंभ काल मे ही उनमे कवित्त्व शक्ति जागृत हो उठी थी। ये अपने तत्कालीन पत्रों मे समस्या पूर्तियाँ करके भेजा करती थीं। इनकी समस्या पूर्तियाँ वड़ी ओजस्विनी और जोरदार हुआ करती थीं। इन्हीं दिनों अवध के राजा प्रताप वहादुर सिंह जी के राज दरवार मे वल्देव प्रसाद अवस्थी नाम के एक

रघुराजकुंवरि

अब तक राधा-कृष्ण की जो धारा प्रवाहित होती चली आ रही थी, और जिसने अनेक कवि और कवियित्रियों के हृदय को आप्लायित कर दिया था, रघुराजकुंवरि उससे कुछ दूर दिखाई देती हैं। इन्होंने कृष्ण काव्य की धारा मे न बह कर राम काव्य की सृष्टि की है। सीता और श्रीरामचन्द्र जी ही इनकी कविता के मुख्य विषय हैं। इनकी अधिकांश कवितायें वर्णनात्मक हैं। इन्होंने सीता और श्रीरामचन्द्र जी की अंग-छवि को अलौकिक और चमत्कार-पूर्ण उपमाओं के द्वारा व्यंजित करने का प्रयत्न किया है। जानकी जी के नेत्रों का वर्णन करते हुये रघुराजकुंवरि कहती हैं:—

मृग-मनहारे, मीन खजन निहारि वारे,
प्यारे रतनारे कजरारे अनियारे हैं।
दैन नर धारे कारी भृकुटि धनुप वारे,
सुठि सुकुमारे शोभा सुभग सुढारे हैं॥

रघुराज कुँवरि (रामप्रिया)

कैधौं हैं जलज कारे कैधों ये त्रिगुण युक्त,
चन्द्रमा पै चंचला के चपल सितारे हैं।
'राम प्रिया' राम-मन-रमन अँगारे कैंधौं,
जनक-किशोरी बाँके लोचन तिहारे हैं॥

उक्तियाँ अच्छी, और वर्णन आकर्षक है। इसी प्रकार का आकर्षक वर्णन इनकी सभी रचनाओं मे विद्यमान है। इनकी उक्तियों और उपमाओं से इनके अच्छे काव्य-ज्ञान का पता चलता है। इनका रचना अधिक प्रौढ़, सुसंगठित और ओज-माधुर्य संयुक्त है।

इनका जन्म संवत् १९४० के लगभग हुआ था। इनका कविता का नाम 'राम प्रिया' है। प्रतापगढ के राजा सर प्रतापबहादुर सिंह जी के साथ इनका विवाह हुआ था। इन्होंने 'राम प्रिया-विलास' नाम की एक पद्य पुस्तक भी लिखी है। सीता और श्रीरामचन्द्र जी को अंग-छवि का वर्णन इनके निम्नाकित छन्दों मे देखिये :—

[१]

हरषित अंग भरे हृदय उमंग भरे,
रघुबर आयो मुद चारों दिसि व्है गयो।
सुन्दर सलोने सुभ्र सुखद सिंहासन पै,
जनक सप्रेम जाय आसन जवै दयो॥
'राम प्रिया' जानकी को देखत अनूप मुख,
पंकज कुमुद सम दूजे रूप व्है गयो।

मानों मणि मंडित शिखर पै मयंक तापै,
　　मंजु दिनकर प्रात प्राची सो उदै भयो ॥

[२]

सिय-मुख चन्द त्याग दूजो चंद मंद कहाँ
　　कौन गुण जानि समता मे अवलोकों मै ।
मुख अकलंकी सकलंकी तू प्रसिद्ध जग ।
　　कहि समझाऊ कैसे वाको जाय रोकों मै ॥
दिवा द्युति-हीन घन समय मलीन-खीन,
　　'राम-प्रिया' जानै तोहिं जन सब लोकों मै ॥
लली मुख लालिमा गुलाल सो लखत जैसे,
　　तैसी दरसावो तो सराहौ तब तोकों मै ॥

[३]

किंसुक गुलाब कचनार औ अनारन के,
　　विकसे प्रसूनन मलिन्द छवि धावै री ।
बेली बाग वीथिन वसंत की बहारै देखि,
　　'राम प्रिया' सियाराम सुख उपजावै री ॥
जनक किशोरी युग करते गुलाल रोरी,
　　कीन्हे वर जोरी प्यारे मुख पै लगावैं री ।
मानों रूप सर ते निकसि अरविन्द युग,
　　निकसि मयंक मकरन्द धरि लावैं री ॥

जुगलप्रिया

श्री जुगलप्रिया के आराध्य देव श्री कृष्ण जी थे; अतः इनकी रचनाओं के प्रमुख पात्र भी श्री कृष्ण जी ही हैं। किन्तु ये श्री कृष्ण को एक साधारण नायक न समझ कर उनमें ईश्वर की ज्योति का दर्शन करती थीं और उसी भावना से इन्होंने अपनी कविताओं मे उनका चित्रण भी किया है। इनके हृदय में श्री कृष्ण जी के लिये प्रेम है, भक्ति है, पीड़ा है, और है, असीमित भावनाओं को लिए हुये। इसी लिये इनकी रचनायें तत्कालीन कवियित्रियों की रचनाओं से अधिक ऊंची दिखाई देती हैं। इन्होंने जहाँ जिस विषय का चित्रण किया है, वहाँ एक व्यापक सिद्धान्त और आदर्श पाया जाता है। कवि जीवन की यही श्रेष्ठता भी है। जुगल प्रिया इस श्रेष्ठता के अधिक सानिकट पहुंचती हुई दिखाई देती हैं। देखिये:—

यह तन एक दिन होय जु छारा।
नाम निशान न रहिहैं रंचहु भूलि जाय गो सब संसारा।
काल घरी पूरी जब ह्वै है लगे न छिन छाँड़त भ्रम जारा।

या माया नटिनी के बस में भूलि गयो सुख- सिन्धु अपारा।
जुगल प्रिया अजहुँ किन चेतन मिलि हैं प्रीतम प्यारा॥

जुगल प्रिया भक्त थीं। इस लिये ईश्वर-भक्ति के अतिरिक्त इन का ध्यान ही किसी ओर न गया। किन्तु इनका हृदय विशाल था, और उस विशाल हृदय मे उच्च भावनायें थीं। संसार से विरक्त होकर जहाँ इन्होंने अपनी भक्ति की दृढ़ता प्रगट की है, वहाँ अपने आप इनकी उच्च भावनायें व्यंजित हो उठी हैं। देखिये, नीचे के पद में जुगल प्रिया की उच्च भावना कितनी प्रस्फुटित हुई है:—

माई मोकों जुगल नाम निधि भाई।
सुख सम्पदा जगत की झूठी आई संग न जाई।
लोभी को धन काम न आवे अंतकाल दुख दाई।
जो जोरे धन अधम करम ते सर्वस चलै नसाई॥
कुल के धरम कहा लै कीजै भक्ति न मन में आई।
जुगल प्रिया सब तजौ भजौ हरि चरन कमल मन लाई

जुगल प्रिया जी ने शृङ्गार रस मे भी कवितायें लिखी हैं। किन्तु इनके शृङ्गार रस मे भी इनकी पवित्रता है, उच्च मानवी भावना है। इनका शृङ्गार रस बड़ा ही संयत और बड़ा ही गंभीर है। ज्ञात ही नहीं होता, कि वह शृङ्गार रस है। कहने का तात्पर्य यह है, कि उसमे भक्ति-वेदना का इतना मिश्रण है, कि मन उसे छोडकर शृङ्गार की ओर जाता ही नहीं। शृङ्गार रस हो, या भक्ति, इन्होंने जिस किसी भी रस में अपने भावों को रनागा है,

उसका हृदय पर अधिक प्रभाव पड़ता है। इनकी समस्त रचनायें हृदय को छूतीं और प्राणों में एक द्वन्द उत्पन्न करती हैं।

जुगल प्रिया का जन्म संवत् १९२८ के लगभग बुन्देल खण्ड के ओरछा राज्य वंश में हुआ था। इनके पिता का नाम श्रीमान महेन्द्र प्रताप सिंह जू देव और माता का नाम श्री मती वृषभानु कुंवरि था। इनकी माता स्वयं कृष्ण भक्त थीं और उन्हीं के जीवन की छाप जुगल प्रिया के भी जीवन पर पड़ी। और ये भी श्री कृष्ण जी को अपना आराध्य देव मान बैठीं। छतरपुर राज्य के नरेश श्रीमान् विश्वनाथ सिंह जू देव के साथ इनका विवाह हुआ था। ये बड़ी सहृदय थीं। साधु-सन्तों का सम्मान करना अपना धर्म समझती थीं। सम्वत् १९७८ के चैत के महीने मे इनका देहावसान होगया।

देखिये, नीचे की कविताओं मे उनकी भक्ति किस प्रकार प्रस्फुटित हुई हैं:—

[१]

मन तुम मलिनता तजि देहु।
सरन गहु गोविन्द की अब करत कासो नेहु॥
कौन अपने आप काके परे माया सेहु।
आज दिन लौं कहा पायो कहा पैहौ खेहु॥
विपिन वृन्दा वास करु जो सब सुखनि को गेहु।
नाम मुख में ध्यान हिय मे नैन दरसन लेहु॥

छाँड़ि कपट कलंक जग में सार साँचो एहु।
'जुगल प्रिया' बन चित्त चातक स्याम स्वाँती मेहु॥

[२]

दृग तुम चपलता तजि देहु।
गुंजरहु चरनार विन्दनि होय मधुप सनेहु॥
दसहुँ दिसि जित तित फिरहु किन सकल जग रस लेहु।
पै न मिलि है अमित सुख कहुं जो मिलै या गेहु।
गहौ प्रीति प्रतीति दृढ़ ज्यों रटत चातक मेहु।
बनो चारु चकोर पिय मुख-चन्द छवि रस एहु॥

[३]

नाथ अनाथन की सब जानै।
ठाढ़ी द्वार पुकार करति हौं श्रवन सुनत नहिं कहा रिसानै।
की बहु खोट जानि जिय मेरी की कछु स्वारथ हित अरगानै॥
दीन बन्धु मनसा के दाता गुन औगुन कैधो मन आनै।
आप एक हम पतित अनेकन यही देखि का मन सकुचानै॥
झूँठो अपनो नाम धरायो समझ रहे हैं हमहि सयानै।
तजो टेक मनमोहन मेरो 'जुगल प्रिया' दीजे रस दानै॥

[४]

सखी मेरी नैनन नींद दुरी।
पिय सों नहि मेरो बस कछु री।
तलफि तलफि यों ही निसि बीतति नीर बिना मछुरी॥

उड़ि उड़ि जात प्रान पंछी तहँ बजत जहाँ बसुरी।
'जुगल प्रिया' पिया कैसे पाऊं प्रगट सुप्रीति जुरी॥

[५]

जुगल छवि कब नैनन मे आवै।
मोर मुकुट की लटक चन्द्रिका सटकारो लट भावै॥
गर गुंजा गजरा फूलन के फूल से बैन सुनावै।
नील दुकूल पीत पट भूषण मन भावन दरसावै॥
कटि किंकिनि ककन कर कमलनि वचनित मधुर छवि छावै।
'जुगल प्रिया' पद-पदुम परसि कै अनत नहीं सचुपावै॥

साईं

साईं की रचनाओं में एक आदर्श है, नैतिकता है। आदर्श और नैतिकता ही इनकी कविता की जान है। ये नैतिकता और आदर्श के मंच पर खड़ी होकर संसार को उपदेश देती हुई दिखाई देती हैं। इनका नैतिक उपदेश किसी एक जाति के लिये नहीं, किसी एक देश के लिये नहीं, बल्कि समस्त विश्व के मानव समुदाय के लिये है। इन्होंने अपनी सीधी-सादी भाषा में जीवन के जो नैतिक आदर्श सामने रक्खे हैं, वे अधिक व्यवहारिक और और नपे-तुले है। साईं की कविता इस दृष्टि से अधिक श्रेष्ठ कही जा सकती है। इनकी रचनाओं में भले ही उच्च कल्पना का अभाव हो, किन्तु व्यवहारिकता और उपयोगिता की दृष्टि से इनकी रचनाये बहुत आगे बढ़ी हुई दिखाई देती हैं। इनकी यह सब से बड़ी विशेषता है।

साईं हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि गिरिधरराय की स्त्री थीं। इनके जन्म संवत का ठीक ठीक पता नहीं चलता। किन्तु कुछ विद्वानों के कथनानुसार इनका जन संवत १७७० के आस पास

मांना जा सकता है। इन्होंने 'कुण्डलिया' मे अपनी सभी रचनायें बद्ध की है। इनके पति गिरिधरराय कुण्डलिया के एक बहुत प्रसिद्ध कवि हो चुके है। उन्हीं का प्रभाव इनकी रचनाओं पर भी पड़ा है। गिरिधर की तरह इनकी कुण्डलियों का भी अधिक प्रचार है। इन्होने कहीं कही अपनी रचनाओं में उर्दू और फारसी के शब्दों का भी प्रयोग किया है।

उदाहरण के लिये हम यहाँ इनकी कुछ कुण्डलियाँ उद्धृत करते है:—

[१]

साईं बैर न कीजिये, गुरु पण्डित कवि यार।
बेटा बनिता पौरिया, यज्ञ करावन हार ॥
यज्ञ करावन हार, राज मंत्री जो होई।
विप्र परोसी वैद्य, आप की तपै रसोई ॥
कह गिरिधर कविराय युगन ते यह चलि आई।
इन तेरह सों तरह दिये बनि आवे साईं ॥

[२]

साईं ऐसे पुत्र ते बांझ रहे बरु नारि।
बिगरे बेटा बाप से जाय रहे ससुरारि।
जाय रहे ससुरारि नारि के हाथ बिकाने।
कुल के धर्म नसाय और परिवार नसाने ॥
कह गिरिधर कविराय मातु झंखे वहि ठाईं।
अस पुत्रनि नहिं होय बाँझ रहतिउँ बरु साईं ॥

रानी रघुवंश कुमारी

रानी रघुवंश कुमारी की रचनायें भक्ति-भावना से ओतप्रोत हैं। ये जहाँ ईश्वर की उपासना करती है, वहाँ पति की उपासना को भी अधिक महत्व देती हैं। वास्तव में बात तो यह है, कि ये अपने सांसारिक पति-भक्ति की ही झाँकी से ईश्वर का दर्शन करती है। इनकी दृष्टि मे पति ही सर्वस्व है, और उसकी उपासना करके संसार मे सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है। निम्नांकित पंक्तियों मे इन्होंने अपनी पति-भक्ति भावना का कितना सुन्दर चित्रण किया है:–

पग दाबे ते जीवन-मुक्ति लही।
विष्णु पदी सम पति पद-पंकज छुवत परम पद होवे सही।
निरखि निरखि मुख अति सुख पावत प्रेम समुद के धार वही।
रिद्धी सिद्धि सकल सुख देवै सो लक्ष्मी पद हरि के गही।
जहाँ पति-प्रीति तहाँ सुख सरवस यही बात सुनि साँच कही॥

एक प्रकार से पति-भक्ति का वर्णन इन्होने सीमित सा कर दिया है। इनकी कविता सीधी-सादी है, किन्तु उसमें इनका

पति-भक्ति से भरा हुआ हृदय ख़ूब छलकता है। और यही उनकी कविता की सबसे बड़ी बिशेषता है। इन्होंने जो कुछ लिखा है, हृदय के साथ लिखा है। इसी लिये इनकी समस्त रचनायें हृदय-स्पर्शिनी भी हैं।

इनका जन्म सम्बत १९२५ में भगवान पुर के राजा श्रीसूर्य भानु सिंह जी के यहाँ हुआ। बाल्यावस्था ही में कबिता के प्रति इनके हृदय में प्रेम उत्पन हो गया था। पन्द्रह वर्ष की अवस्था मे आपका बिवाह दियरा राज्य के स्वत्त्वाधिकारी श्री रुद्र प्रताप साही से हुआ। आपने कइ पुस्तके भी लिखी हैं, जिनमें तीन प्रकाशित भी हो चुकी हैं।

आपकी निम्नांकित कविताओं से आपकी पति-भक्ति का अच्छा परिचय मिलता हैः—

[१]

पिय के पद कंचन-राती।
विष्णु विरंचि संभु सम पति मे छिन-छिन प्रेम लगाती।
तन मन बचन छाँड़ि छल भामिनि पति सेवति बहु भांती॥
कबहुँ नहिं प्रीति सुनाती।
पिय के पद कंचन राती।
दासी सम सेवति जननी सम खान पान सब लाती
सखि सम केलि करति निसि वासर भगिनी सम समझाती॥
बन्धु सम संग सँगाती।
प्रिय के०॥

प्रिय पति-विरह अमर पुरहू में रहति सदा अकुलातीं।
पति सँग सघन विपिन को रहिबो सेवत रस मदमाती॥
हृदय मानहिं बहु भाँती।
पिय के०॥

नाहिंन दूरि रहति नहिं पर घर एकाकिन कहि जाती।
मूँदति नैन ध्यान उर आनति गुनवति पति गुन गाती॥
नहिं मन मोद समाती।
पिय के पद कंचन राती॥

[२]

पिय चलती बेरियाँ, कछु न कहे समझाय।
तन दुख मन दुख नैन दुख हिय में दुख की खान॥
मानो कबहूं ना रही, वह सुख से पहचान।
मन में बालम अस रही, जनम न छोड़ति पाय।
बिछुड़न लिखा लिलार में, तासों कहा बसाय॥
बालम बिछुड़न कठिन है, करक करेजे हाय।
तीर लगे निकसे नहीं, जब लौं प्रान न जाय॥
जगन्नाथ के सिन्धु में, डोंगी की गति होय।
तास गति पिय के विरह में, हाय हमारी होय॥

[३]

पहिले पै ठगोरी ठगो हमको फिर लाज के बन्धन छोरि दियो।
बल बुद्धि हर्‌यो निज बातन ते अबला अति जान सताइ लियो॥

निज सीधे चितैबे की साध रही बिरहानल दाढ़ लगाय दियो।
सब बातन मे पिय बीर बनो एक प्रीति में दाँव चली न हियो॥

[४]

फिरै चारिहु धाम करै ब्रत कोटि कहा बहु तीरथ तोय पिये तें।
जप होम करै अनगंत कछू न सरै नित गंग नहान किये तें॥
कहा धेनु को दान सहस्रन बार तुला गज हेम करोर दिये तें।
'रघुवंश कुमारी' वृथा सब है जब लौं पति सेवै न नारि हियतें॥

आपने अन्यान्य विषयों पर भी कुछ कवितायें लिखी हैं। देखिये:—

[५]

खस के वितान पै गुलाब जल फुइयाँ फुइयां,
बीजुली के पंखे निसि बासर फिरै करै।
चन्दन कपूर चोवा चम्पा औ चमेली जुही,
आम बौरि मोगरा के इतर झरै परै॥
रंग भरे संग तरे काबुली अनार मीठे,
पौढ़े जल केवड़ा के डब्बे मे भरैं तरैं।
जेठ को प्रभाव तेज तेहू पै सताये आप,
स्वेतन की बूँदे मुख सी लरैं परैं॥

[६]

कहत पुकार कोइलिया हे ऋतु राज।
न्याय-दृष्टि से देखहु विपिन समाज।

सोना सम्पति काज त्यागि सब काज।
भये उदासी बिरिया बिसरी लाज ॥
ध्यान करहु इत अब सुधि कस नहिं लेत।
तीछन बहत बयरिया करत अचेत ॥

सरस्वती देवी

हिन्दी की प्राचीन कवियित्रियों में श्रीमती सरस्वती देवी का एक विशेष स्थान है। इनकी रचनाओं में एक आदर्श है। और वह आदर्श है, भारत की एक प्राचीन नारी का। यद्यपि ये उच्च कल्पना के साथ काव्य जगत मे प्रवेश करती हुई नहीं दिखाई देतीं किन्तु इनकी रचनाओं में ओज है, माधुर्य है, और है प्रर्याप्त सरसता। इनकी कविताओं के सम्बन्ध में हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि प० अयोध्यासिंह जी उपाध्याय कहते है:-सरस्वता देवी जी सहृदया है, और सरस रचनायें करती हैं। इनकी रचना अत्यन्त मधुर और हृदय-ग्राहिणी है। इनमे कविता सम्बन्धी जो गुण है, वे आदरणीय हैं।"

सरस्वती देवी की रचनाओं मे उनके जीवन की छाप है। उनका हृदय भारत के प्राचीन नारी-आदर्श से गौरवान्वित है। वे जब इस नवीन युग मे भारत की स्त्रियों को नवीन प्रवाह में बहती हुई देखती हैं, तब उनका कवि हृदय तिलमिला उठता है, और वे उपदेशिका बन कर स्त्रियों को उपदेश देने

लगती हैं। इनकी अधिकांश रचनाओं में इनकी यही सुधार-वादी भावना है, इस भावना से दूर हट कर इन्होंने जो कवितायें लिखी हैं, इसमे सन्देह नहीं; कि उनमे अधिक आकर्षण है। इनकी शृंगार रस की कविता देखिये:—

नैन कजरारे कोरवारे धनु-भौंह तान,
　　　　मारत निसंक बान केहु न डरत है।
बेसर बिसेख बेस कीमत जड़ाऊ देखि,
　　　　हारन समेत तारा-पति हहरत है॥
अधर कपोल दन्त नासिका बखानों कहा,
　　　　केश की सुवेश लखि शेष कहरत हैं।
श्री फल कठोर चक्रवाक से निहार तेरे,
　　　　उरज अमोल गोल घायल करत है।

कल्पना प्राचीन होते हुये वर्णन करने का ढंग सजीव प्राणात्मक है। सरस्वती देवी की यह एक प्रमुख विशेषता है। और इसी विशेषता से काव्य-जगत मे ये आदरणीय समझी जाती हैं।

इनका जन्म संवत १९३२ में आज़मगढ़ जिलान्तर्गत कोइरिय-पार नामक गाँव मे हुआ था। इनके पिता पं० रामचरित त्रिपाठी भी एक अच्छे कवि थे। इन्होने अपने पिता से ही शिक्षा प्राप्त की और उन्हीं से बंगला, अँगरेज़ी और संस्कृत भी सीखी। इनका विवाह ज़िला आज़म गढ़ में, नगवा मे, पं० महावीर प्रसाद जी के साथ हुआ था। इन्होंने कई पुस्तकें भी लिखी

हैं, जिनमें 'सुंदरी-सुपंथ' 'नीति-निचोड़' और 'शारदा-शतक छप चुकी हैं। इन्होंने अपनी एक पुस्तक में अपना परिचय स्वयं निम्नांकित शब्दों में दिया है:—

ज़िला जु आज़मगढ़ अहै ता महँ एक विचित्र।
ग्राम कोइरियापार के, कवि द्विज राम चरित्र॥
ताकी कन्या एक मै, मूर्ति मूर्खता केरि।
कुलवंतिन पद-धूरि अस गुणवंतिन के चेरि॥
मम शिक्षक कोउ और नहिं, निज ही पिता सुजान।
कठिन परिश्रम करि दियो, विद्या-दान महान॥
प्रथम पढ़ायो व्याकरण, पुनि कछु काव्य विचार।
तदनन्तर सिखयो गणित बहुरि सुरीति प्रकार॥
तब कछु उर्दू फारसी बंगला वर्ण सिखाय।
कछु अँगरेजी अक्षरन पितु मोंहि दीन्ह दिखाय॥
जब लगि मैं मैके रही लिखत पढ़त रही नित्त।
अब घर पर परवश परी, रहि नहिं सकत सुचित्त॥

इससे यह ज्ञात होता है, कि ससुराल में आने पर कविता के विकास के साधन इन्हे न प्राप्त हुये। और इनका काव्य प्रवाह अवरुद्ध सा हो उठा। यदि इनके कवि हृदय को विकास के सुन्दर साधन उपलब्ध होते तो इसमें सन्देह नहीं कि ये काव्य-जगत में अपना और भी अधिक उज्वल नाम करतीं। इनके निम्नांकित पद्य देखिये:-

भाग्य हीना क्या स्वयं को लेख कर,

पाप से कलुषित हृदय जलते नहीं !

जिस प्रकार पुरुष कवियों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कविता में एक नवीन युग उपस्थित किया था, उसी प्रकार स्त्री कवियित्रियों में राजरानी देवी ने भी कविता के एक नवीन संसार की सृष्टि की है। यद्यपि राजरानी देवी का यह नया संसार अपना नही, भरतेन्दु हरिश्चन्द्र का है। किन्तु तो भी सर्व प्रथम इन्होंने उसका सन्देश स्त्री कवियित्रियों को सुनाया है। इनकी कविताओं मे जागरण है, नया भाव है, नई वेदना है। अभी तक कवियित्रियो के जिस काव्य जगत मे हम विचरण करते हुये चले आ रहे थे, यहाँ पहुँचते ही वह समाप्त हो जाता है, और उसके स्थान पर एक नवीन काव्य-जगत की सृष्टि होती है, और उसका बहुत कुछ श्रेय राजरानी देवी ही को है। अतः कवियित्रियों के काव्य-इतिहास मे राजरानी देवी का प्रमुख स्थान है।

राज रानी देवी का जन्म मध्य प्रान्त के नरसिंह पुर जिले में पिपरिया नामक गाँव मे हुआ था। १२ वर्ष की अवस्था में आपका विवाह नरसिंहपुर निवासी श्रीयुत लक्ष्मीप्रसाद जी के साथ हुआ। आपके नौ पुत्र और चार कन्यायें हैं। हिन्दी के सुकवि बाबू रामकुमार वर्मा एम० ए० आप ही के पुत्र हैं। संवत १९८५ में आपका देहावसान हो गया। इन्होंने

'प्रमदा प्रमोद' और 'सती संयुक्ता' नामक दो कविता की पुस्तकें भी लिखी हैं।

निम्नांकित कविताओं मे इनकी देश-भक्ति देखिये :-

[१]

भव्य भारत-भूमि की स्वाधीनता,
जब यवन से पद दलित थी हो चुकी ।
दीखती सर्वत्र थी अति दीनता ,
फूट की विष-वेलि भी थी बो चुकी ॥
पूर्व यश की क्षीण स्मृति ही शेष थी,
वीरता केवल कहानी ही रही ।
बंधुओं में बंधुता निश्शेष थी,
दमन की परिपूर्ण धारा थी बही ॥
शत्रुओं को दण्ड देने के लिये,
आर्य शोणित मे न इतनी शक्ति थी ।
बीरता का नाम लेने के लिये,
म्यान के सौन्दर्य पर ही भक्ति थी ॥
ललित ललनाये बनी सुकुमार-थीं,
अंग पर आभूषणों का भार था ।
रत्न हारों पर समुद वलिहार थीं
सेज ही ससार का सब सार था ॥
नेत्र लड़ना ही सुखद रण-रंग था,
चारु चितवन ही अनोखा तीर था ।

पथ-प्रदर्शक अबन होना चाहिये।

सोच लो संसार के कान्तार मे,
बद्ध होकर यदि जिये तो क्या जिये?

कर्म के स्वच्छन्य सुख मय क्षेत्र में,
किंकिणी के साथ भी तलवार हो।

शौर्य हो चंचल तुम्हारे नेत्र में,
सरलता का अंग पर मृदु भार हो।

सुखद पतिव्रत धर्म रथ पर तुम चढ़ो,
बुद्धि ही चंचल अनूप तुरग हों।

दिव्य जीवन के समर मे तुम लढ़ो,
शत्रु के प्रण शीघ्र ही सब भंग हों।

हार पहनो तो विजय का हार हो,
दुन्दुभी यश की दिगन्तों में बजे।

हार हो तो बस यही व्यवहार हो,
तन चिता पर नाश होने को सजे॥

मुक्त फणियों के सदृश कच-जाल हों,
कामियों को शीघ्र डसने के लिये।

अरुणिमा-युत हाथ उनके काल हों,
सत्य का अस्तित्व रखने के लिये।

[३]

हो रहा कन्नौज में आनन्द है,
हर्ष की धारा नगर में है बही।

वैर और विरोध बिल्कुल बन्द हैं,
सर्व जनता आज हर्षित हो रही ॥
भीड़ भारी हो रही प्रासाद में,
खुल गया है द्वार सारे कोष का।
नर तथा नारी हुये उन्माद में,
गूँज उठता शब्द ऊँचे घोष का ॥
नारियाँ सब चल पड़ीं शृंगार कर,
राज्य-गृह की ओर अनुपम हर्ष से।
मधुरिमा-मय सुखद जय जयकार कर,
हृदय के आनन्द के उत्कर्ष से ॥
थालियों में फूल-मलायें सजीं,
गीत गा-गाकर चलीं सुकुमारियाँ।
हाव-भावों में स्वयं रति को लजा,
मन-सहित कच बाँध सुन्दर नारियाँ ॥
मुग्ध मुग्धायें चलीं व्रीड़ा सहित,
शीघ्र सकुचा कर पुरुष की दृष्टि से।
मन्द गति से वे चली क्रीड़ा सहित,
नेत्र चंचल कर सुमन की वृष्टि से ॥
था बड़े आनन्द का कारण वही,
एक पुत्री थी हुई जयचन्द के।
हर्ष से थी उगमती सारी मही,
आ गये थे दिन अधिक आनन्द के ॥

—:o:—

बुन्देलाबाला

श्रीमती बुन्देलाबाला एक उच्च कोटि की कवियित्री थीं। इन्होंने एक अच्छा कवि-हृदय पाया था। इनकी कविताओं में देश और समाज की वेदना है, जीवन और जागृति का एक नवीन सन्देश है। इनके इस सन्देश में इनकी अपनी मौलिकता है, अपनी विशेषता है। इन्होंने अपनी रचनाओं में जहां देश-भक्ति की धारा बहाई है, वहाँ वास्तव में देश भक्ति है, देश-प्रेम है। इसी लिये एक सुप्रसिद्ध समालोचक ने इनकी कविताओं के सम्बन्ध में अपनी सम्मति प्रगट करते हुए लिखा है:—श्रीमती बुन्देला बाला ने अच्छी प्रतिभा पाई थी। यदि वे असमय में ही काल के गर्भ में समा न जातीं तो उनसे हिन्दी-साहित्य का अधिक कल्याण होता। इनकी रचनाओं में स्वाभाविकता की स्वाभाविक छटा के साथ अधिक ओजस्विता भी है।

श्रीमती बुन्देला बाला हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि स्वर्गीय लाला भगवानदीन जी की धर्म-पत्नी थीं। इनका वास्तविक नाम गुजराती बाई था; किन्तु ये बुन्देला बाला के नाम से कविता

किया करती थीं। यह सच है, कि इन्होंने लाला जी से ही कविता करनी सीखी, किन्तु यह भी सच है, कि इनके प्रतिभा शाली कवि-हृदय पर लाला जी की कविताओं की छाप न पड़ सकी। लाला जी शृङ्गारी कवि थे। कभी कभी राष्ट्रीय कवितायें भी किया करते थे। किन्तु उन की राष्ट्रीय कविताओं में बुन्देला बाला की कविताओं की भांति जागरण का सन्देश नहीं है। यहां मुझे यह कहने में संकोच नहीं होता, कि लाला जी की राष्ट्रीय कविताओं पर श्रीमती बुन्देला बाला की छाप है। लोगों का यह कहना भी है, कि लाला जी का सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय ग्रन्थ 'वीर पंच रत्न' श्रीमती बुन्देला बाला ही की प्रेरणा का परिणाम है।

श्रीमती बुन्देला बाला का जन्म संवत् १९४० मे गाजी पुर के शादिया बाद नामक कस्बे में एक कायस्थ कुल मे हुआ था। इनके पिता का नाम श्रीयुत परमेश्वर दयाल जी था। बीस वर्ष की अवस्था मे इनका विवाह हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि और ग्रन्थ-कार स्वर्गीय लाला भगवान दीन जी से हुआ। 'दीन' जी के संसर्ग से ही आप में कवित्त्व शक्ति का विकास हुआ। दुख है, कि विवाह के छः वर्ष पश्चात् ही आप का देहावसान हो गया और हिन्दी-साहित्य एक प्रतिभा शालिनी कवियित्री की सुन्दर रचनाओं से सदा के लिए वंचित होगया

इनकी निम्नांकित कविताओं से इनकी देश-भक्ति और कवित्त्व-शक्ति का अच्छा परिचय मिलता है:--

[१]

सावधान

सावधान हे युवक उमंगो, सावधानता रखना खूब।
युवा समय के महा मनोहर विषयों मे जाना मत डूब ॥
सर्व काज करने के पहले पूछो अपने दिल से आप।
"इसका करना इस दुनियाँ में पुण्य मानते हैं या पाप"॥
जो उत्तर दिल देय हमारा ;उसे समझ लो अच्छी भाँति।
काज करो अनुसार उसी के नष्ट करो दुःखों की पाँति ॥
कभी भूल ऐसी मत करना अद्धी के लालच मे आज।
देना पड़ै कलह ही तुमको रत्न माल सम निज कुल-लाज ॥
युवा समय के गर्म रक्त मे मत बोओ तुम ऐसा बीज।
वृद्ध समय के शीत रक्त मे फूलै चिन्ता फलै कुबीज ॥
पश्चात्ताप कुरस नित टपकै बदनामी गुठली दृढ़ होय।
उँगली उठै बाट मे चलते मुँह भर बात न बूझै कोय ॥
यौवन ऋतु बसन्त में प्यारे कुसुम सपूत देखि मन भूल।
दबा-दबा कर युक्त-सहित रख निज उमंग के सुन्दर-फूल ॥
सावधान ! इनको विनष्ट कर फिर पीछे पछतावेगा।
वृद्ध वयस सन्मान सुगंधित फिर कैसे महकावेगा ॥
परमेश्वर के न्याय-तुला की डाँड़ी जग मे जाहिर है।
उसकी ऊँच-नीच कछु करना मानव-बल से बाहर है ॥
अहंकार-सर्वदा जगत में मुँह की खाता आया है।
नय नम्रता मान पाते हैं सबने यही बताया है ॥

है प्रत्येक-भव्यता के हित इस जग में निकृष्टता एक।
विषय रूप मिष्टान्न मध्य हैं विषमय आमय-कीट अनेक॥
इन्द्रिय-विषय-शिखर दूरहिं ते महा मनोरम लगते है।
निकट जाय जाँचो समझोगे रूप हरामी ठगते हैं॥
है प्रत्येक-ऊँच मे नीचा प्रति मिठास मे कड़वा स्वाद।
प्रति कुकर्म मे शर्म भरी है मर्मखोय मत हो बरबाद॥
प्रकृति नियम यह सदा सत्य है कैसे इसे मिटाओगे।
जग मे जैसा कर्म करोगे, वैसा ही फल पावोगे॥

[२]

माता और पुत्र की बात चीत

माता—

हे प्यारे कदापि तू इसको तुच्छ श्याम रेखा मत मान।
यह है शैल हिमाचल इसको भारत-भूमि-पिता पहचान॥
नेह-सहित ज्यों पितु पुत्री का सादर पालन करता है।
यह हिम-गिरि त्यो ही भारत-हित पितृ-भाव हिय धरता है।
गंगा जमुना युगल रूप से प्रेम-धार का देकर दान।
भारत-भूमि-रूप दुहिता का नेह-सहित करता सम्मान॥

पुत्र—

यह जो बाम ओर नक्शे के रेखा मय अतिशय अभिराम।
शोभा मय सुन्दर प्रदेश है मुझे बता दे उसका नाम॥

माता—

बेटा यह पंजाब देश है पुण्य-भूमि सुख शान्ति निवास।
सर्व प्रथम इस थल पर आकर किया आरियों ने निजवास॥

कहीं गान-ध्वनि, कहीं वेद-ध्वनि, कहीं महा मंत्रों का नाद।
यज्ञ फूल से रहा सुवासित यह पंजाब सहित-आह्लाद॥
इसी देश में बस के 'पोरस' ने रक्खा है भारत-मान।
जब सम्राट सिकन्दर आकर किया चाहता था अपमान॥
इससे नीचे देख, पुत्र, यह देश दृष्टि जो आता है।
सकल वालुका-यय प्रदेश यह राजस्थान कहाता है॥
इस के प्रति गिरिवर पर बेटा अरु प्रत्येक नदी के तीर।
देश मान हित करते आये आत्म-विसर्जन क्षत्रिय वीर॥
कोई ऐसा स्थान नहीं है जहां अमर चिन्हों के रूप।
वीर कहानी रजपूतों की लिखी न होवे अमर अनूप॥
क्षत्रिय-कुल-अवतंस वीरवर है प्रताप जी का यह देश।
रानी पद्मावती सती ने यहीं किया है नाम विशेष॥
क्षत्रिय वंश जाति को चाहिए करना इसको नित्य प्रणाम।
क्षत्रिय दल का जग में इससे सदा रहेगा रोशन नाम॥

[३]

चाहिए ऐसे बालक !

परशुराम श्रीराम भीम अर्जुन उद्दालक।
गौतम शंकर-सरिस धर्म सत् के संचालक॥
उत्साही दृढ़ अंग प्रतिज्ञा के प्रति पालक।
शारीरिक मस्तिष्क शक्ति-बल अरिगण-घालक॥
काज करैं मन लाय, बनैं शत्रुन उर-शालक।
अब भारत माताहिं चाहिये ऐसे बालक॥१॥

दुर्बल अरु भयभीत सदा जो कहत पुकारी।
'अरे बाप यह काज हमैं सूझत अति भारी।"
"मै नाहीं कर सकत" शब्द मुख तें न उचारैं।
"हां करिहौं उद्योग" सहित उत्साह पुकारैं॥
सत्य भाव से कहैं करैं अरु बनै न टालक।
अब भारत माताहिं चाहिए ऐसे बालक ॥२॥
जो करना है, उसे करै, अपने निज हाथन।
देश-भलाई हेत करै अभिलाषा लाखन॥
कठिन परिश्रम देखि न कबहूँ मन ते हारै।
भारी भार निहार न कबहूं कंधा डारै॥
करैं काज बनि कुल-कलंक-कारिख-प्रच्छालक।
अब भारत माताहिं चाहिये ऐसे बालक ॥३॥
देखि कठिन कर्त्तव्य उसे जू-जू जनि जानै।
अपना धर्म बिचारि उसे अपना करि मानै॥
ऐसे बालक जबहिं देश मे मुखिया ह्वै हैं।
तब भारत के सकल दुःख दारिद्र नशै हैं॥
मिटि हैं हिय को ताप और कटि हैं जंजालक।
अब भारत माताहिं चाहिये ऐसे बालक ॥४॥

श्रीमती गोपाल देवी

श्रीमती गोपाल देवी हिन्दी की सुप्रसिद्ध साहित्य-सेविका हैं। कहना चाहिये कि आपने अपने सुयोग्य पति पं० सुदर्शनाचार्य जी के साथ साहित्य-सेवा ही में अपने जीवन का अधिकांश समय बिताया है, और इस समय भी साहित्य-सेवा मे ही अपना समय व्यतीत कर रही है। वह एक समय था, जब आप ही के सम्पादकत्त्व में प्रयाग से 'गृहलक्ष्मी' निकलती थीं, और उसके द्वारा स्त्री-साहित्य की धूम मची हुई थी। आपने अपनी गृहलक्ष्मी द्वारा अनेक कवियित्रियों को प्रोत्साहित किया, और उनकी रचनाओं को 'गृहलक्ष्मी' मे छाप कर उन्हे काव्य-जगत मे अधिक आगे बढ़ाया। आप का हृदय स्वयं कवि हृदय है और उसमें अच्छी कवित्त्व शक्ति भी है। किन्तु फिर भी हिन्दी-जगत साहित्य-सेविका ही के रूप में आपसे अधिक परिचित है।

आपने अधिकांशतः बच्चों के लिये ही कवितायें लिखी हैं। आपकी कवितायें अत्यन्त सीधी सादी और सरल हैं। इसमें सन्देह नहीं, कि वे जिस के लिए लिखी गई हैं, उसकी मनोवृत्ति

के अनुकूल हैं। आप ने बच्चों के लिये जो रचनायें लिखी हैं, उनमे अलग अलग शिक्षा-प्रद कहानियां छिपी हुई हैं। इन पद्यात्मक कहानियों से बच्चों का मनोरञ्जन तो होता है, उन्हें शिक्षा भी प्राप्त होती है।

आप का जन्म संवत् १९४० में बिजनौर में हुआ था। आपके पिता का नाम पं० शोभाराम जी था। आपकी शिक्षा-दीक्षा घर पर ही अपने पिता के द्वारा हुई। अठारह वर्ष की अवस्था में आप का विवाह पं० सुदर्शनाचार्य्य जी के साथ हुआ, और आपने उन्हीं के सहयोग से साहित्य-जगत मे प्रवेश किया। आपने कई वर्षों तक 'गृहलक्ष्मी' का सम्पादन किया है, और कई पुस्तकें भी लिखी हैं। आप साहित्य-सेविका और कवियित्री होने के साथ ही साथ कुशल वैद्या-भी हैं, और आज कल लखनऊ मे रह रही है।

बच्चों के लिए लिखी गई आपकी निम्नांकित कवितायें देखिये:—

[१]

मौत और घसियारा

किसी गांव मे इक घसियारा। रहता था किस्मत का मारा।
बेटा बेटी जोड़ू जाता। कोई न थे अल्ला से नाता॥
पर जब पापी पेट न माना। उसने घास छीलना ठाना॥
ठीक दुपहरी जेठ महीना। सिर से पावों बहा पसीना॥
बुड्ढा लगा खोदने घास। हाय पेट यह तेरे आस॥

सुन उसकी बातें पशुओं ने अपने दल में मिला लिया।
अगले दिन पक्षी-दल ने पशुओं पर भारी विजय किया॥
उसी समय पक्षी-सेना ने चमगीदड़ को पकड़ लिया।
घबड़ाकर चमगीदड़ ने पक्षी-नायक से विनय किया॥
आप हमारे राजा हैं, हमभी पक्षी कहलाते हैं।
फिर क्यों हम अपने ही दल से वृथा सताये जाते हैं॥
देखो पंख हमारे, हम उड़ते हैं, पेड़ों पर रहते।
हाय आज झूठी शका वश अपने दल में दुख सहते।"
सुन चमगीदड़ की बातें पक्षी-नायक ने छोड़ दिया।
जान बची चमगीदड़ की तब उसने जय जयकार किया॥
हुई लड़ाई अन्त, अन्त मे सुलह हुई दोनों दल मे।
भेद खुला चमगीदड़ का सारा सब लोगो मे पल में॥
तब से वह ऐसा शर्माया दिन में नहीं निकलता है।
अन्धेरे मे छिपकर चरता नहीं किसी से मिलता है॥
समय पड़े जो दोनों दल की करते हैं हाँ जी हाँ जी।
वे चमगीदड़ के समान दोनों की सहते नाराजी॥

—:o:—
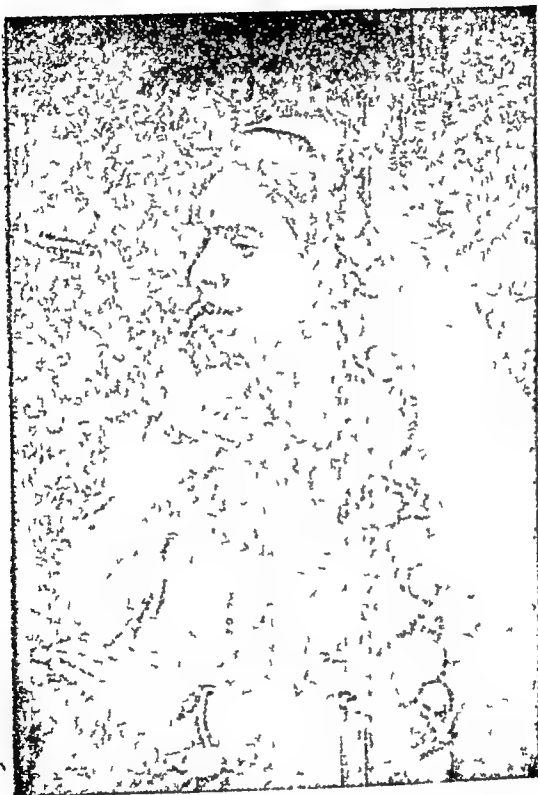
तोरन देवी 'लली'

तोरन देवी 'लली'

'लली' जी हिन्दी की सुप्रसिद्ध कवियित्री और लेखिका हैं। आप ने अपनी रचनाओं द्वारा हिन्दी के स्त्री-साहित्य में पथ-प्रदर्शन का काम किया है। जिन दिनों हिन्दी-साहित्य का स्त्री कवि-समाज प्रगति-हीन होकर एक स्थान पर पड़ा हुआ था, उन्हीं दिनों आप प्रगति लेकर हिन्दी-साहित्य के रंग मंच पर आईं, और इसमे सन्देह नहीं, कि आपने अपनी प्रगतिशील रचनाओं के द्वारा हिन्दी के स्त्री-साहित्य को अधिक आगे बढ़ा दिया। कवियित्रियो के कविता-इतिहास पर जब हम विचार करते है, तब हम यह देखते हैं, कि नवीन युग का स्त्री-कविता-स्रोत आप ही से प्रारंभ होता है। आपने ही सर्व प्रथम स्त्री कवि-समाज को नवयुग का सन्देश सुनाया है, और सुनाया, है, उस समय जब अधिकांश स्त्रियाँ अशिक्षित थीं, और जब शिक्षित स्त्रियाँ भी एक सीमित भावना ही के साथ आगे बढ़ना साहित्य और कविता का धर्म समझती थीं।

लली जी की रचनायें प्रगतिशील हैं, ओजस्विनी हैं, और हैं प्राणदायिनी। उनमे न तो शब्दों की दुरूहता है, और न अदृश्य जगत की कल्पना। उनकी रचनायें सीधे सादे शब्दों में हृदय के भावों के साथ छलकती हुई दिखाई देती हैं। उनमे सरसता है, स्वाभाविकता है, और सरलता है। वे पाठकों के प्राणों को छूती है, और उनमे झनझनाहट उत्पन्न करती हैं। हिन्दी और संस्कृत के सुप्रसिद्ध विद्वान पंडित अमर नाथ झा लली जी की कविताओं के सम्बन्ध मे लिखते हैं:—लली जी की रचनाओं मे विशेषता यह है, कि शब्द-विन्यास में वे दूर-दूर से कल्पनाओं को ढूँढ़ने मे अव्यक्त अदृश्य जगत के परिभ्रमण मे समय नष्ट नहीं करतीं। स्वाभाविक सरलता और सरसता-ये दो गुण इनमें विशेष उल्लेखनीय है। और इन्हीं दो गुणों के कारण वे इतनी हृदय ग्राही हैं। इनके पढ़ने से हृदय पर सद्यः प्रभाव होता है। इनका अर्थ गूढ नहीं है, किन्तु मर्मस्पर्शी है।"

'लली' जी न युग की कवियित्री हैं। उन्होंने जो कुछ गाया है, राष्ट्र का राग गाया है। उनके राग मे राष्ट्र की वेदना है, राष्ट्र की पीड़ा है, और इसी लिये वे पीड़ित भारत के लिये नवयुग की कवियित्री भी हैं। उन्होने अपनी रचनाओं के द्वारा केवल अपने राष्ट्र का आह्वान किया है। उस राष्ट्र का आह्वान किया है, जिसमे स्वाधीनता है, मानवी-वैभव है, और है बन्धु भावना। उनकी रचनाओं में उनका एक अपना पन है, और

उनकी एक अपनी विशेषता है। उस विशेषता मे प्राणों को प्राणवान बनाने की शक्ति है, जीवन को जीवन बाँटने की क्षमता है, और यही लला जी की रचनाओ की सबसे बड़ी विशेषता है।

लली जी की राष्ट्रीय कवितायें बड़ी ही ओजस्विनी और चमत्कार-पूर्ण हैं उन्हे पढ़ने से ऐसा ज्ञात होता है मानों सचमुच उनमे किसी पीड़ित का हृदय बोल रहा है। साहस, शक्ति के साथ करुणा और प्रेम का सम्मिलन हृदय के ऊपर अपना अपूर्व ही प्रभाव डालता है। निम्नांकित पंक्तियों के 'लली' जी की सजीव राष्ट्रीय कल्पना देखिये:—

मै कैसे बन्दा हूँ जननी,
तू परतंत्र कहाँ थी।
बन्दी कौन कहेगा, उसको वह कैसे बन्धन मे?
तेरा ही निर्मित तन जिसका, तेरा वैभव मन मे।
माँ! तू परतंत्रन कहाँ थी?

भाव सरल, किन्तु मर्म स्पर्शी हैं। इसी प्रकार की मर्म-स्पर्शिता लली जी की सम्पूर्ण राष्ट्रीय रचनाओं मे विद्यमान है।

लली जी की रचनाओं में राष्ट्रीय रूप के अतिरिक्त मानवता के लिये जीवन की ज्योति भी हैं। जिस प्रकार उन्होने दुखी होकर राष्ट्र की वेदना का राग गाया है, उसी प्रकार उन्होंने मानवी भावनाओं की सृष्टि भी की है। राष्ट्र की भावनाओ को

व्यक्त करते करते उनकी आकांक्षायें इतनी ऊँची हो गई हैं, कि वे विश्व-भावना के रूप में बदल गई है। उनकी राष्ट्रीय भावनाओं में ही विश्वभावना की झलक है। वे अपने मे राष्ट्र के साथ ही साथ विश्व को भी देखती है, और देखती हैं, जगत के समस्त मनुष्यों को। राष्ट्रीय भावनाओं के साथ उड़ती हुई उनकी स्वतन्त्र कल्पना जब विश्व-भावना का रूप ग्रहण करती है, तब अपने आप ही उनका उच्चादर्श व्यक्त हो जाता है। निम्नांकित पद्यांश में उनके उच्चादर्श को देखिये: –

"अब देखूँगी उत्थानों में,
देश-प्रेम के अभिमानों मे,
वीर श्रेष्ठ के गुण गानों मे,
अमर सुयश मय सन्मानों में,
दर्शन होते ही तज दूँगी,
हिय वेदना अपार–
मुझसे मिल जाना एक बार।

कितनी सुन्दर कल्पना है, कितना अच्छा आत्म चित्रण है। इसी प्रकार की कल्पना लली जी की अधिकांश कविताओं मे विद्यमान है। 'लली' जी ने जो कुछ लिखा है, चमत्कार के साथ लिखा है। उनकी प्रत्येक-कल्पना में चमत्कार है, सरसता है, और है सजीवता। सरलता तो लली जी की एक अपनी विशेष वस्तु है। सरल और स्वाभाविक शब्दों के द्वारा भावों के संसार को जागृत कर देना 'लली' जी भली भाँति जानती हैं।

'लली' जी का जन्म सम्बत् १९५२ में जबलापुर जिला तर्गत 'पिपरिया' नामक गाँव मे हुआ। उनके पिता का नाम पं० कन्हैया लाल तिवारी है। 'लली' जी की शिक्षा-दीक्षा घर पर ही हुई। इनका विवाह रायबरेली निवासी पं० कैलासनाथ शुक्ल बी० ए० के साथ संवत १९६८ में हुआ। शुक्ल जी इस समय सेक्रेटरियट मे एक अच्छे पद पर काम करते हैं।

'लली' जी अपने जीवन के प्रारंभ काल ही से कविता कर रही हैं। पिता के घर में ही इनके हृदय में कविता-शक्ति जागृत हुई, और समय के साथ साथ वह विकसित होती गई। एक युग था, जब 'लली' जी की रचनायें हिन्दी की सभी पत्र-पत्रिकाओं मे बराबर प्रकाशित हुआ करती थीं, और लोग उन्हें बड़े सम्मान की दृष्टि से पढ़ते थे। मिथिलापति महाराज कामेश्वर सिंह जी की ओर से 'लली' जी को 'साहित्य-चन्द्रिका' की उपाधि भी प्राप्त है। इसमें सन्देह नहीं, कि 'लली' जी वास्तव में साहित्य की चन्द्रिका हैं। क्योंकि चन्द्रिका ही की भाँति आपकी विशुद्ध रचनायें हृदय को शीतल करतीं और प्राणवान बनाती हैं। आपकी कविताओं का एक संग्रह 'जागृति' के नाम से प्रकाशित हुआ है, और उस पर आपको पाँच सौ रुपये का सेकसरिया पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है। निम्नांकित कविताओं में 'लली' जी की काव्य-प्रतिभा और उनका कल्पना-चमत्कार देखिये :—

[१]

अभिलाषा

मुझसे मिल जाना एक बार।

कहां कहां मैं ढूंढ़ रही हूँ,

कब से रही पुकार ॥

मुझसे मिल जाना एक बार।

नव कुसुमों की कुंजलता मे,

निशि तारों की सुन्दरता में,

सरल हृदय की उज्वलता में,

कुसुमित दल की उत्कलता मे,

कितना तुमको खोज चुकी हूँ।

जिसका वार न पार—

मुझसे मिल जाना एक बार।

सरिता की गति मतवाली में,

प्रिय बसन्त की हरियाली मे,

बाल प्रभाकर की लाली मे,

निशानाथ की उजियाली में,

आशावादी बन कर लोचन,

अब तक रहे निहार—

मुझसे मिल जाना एक बार।

अब देखूँगी उत्थानों में,

देश प्रेम के अभिमानों में,

वीर श्रेष्ठ के गुण गानों में,

अमर सुयश मय सन्मानों में

दर्शन होते ही तज दूँगी,

हिय वेदना अपार—

मुझसे मिल जाना एक बार।

[२]

एक प्रश्न

बतला दे मेरी दया मयी; कैसे तेरा आह्वान करूं ?

वे लहर कहाँ हैं सागर में,

जिनके सम मधुर पुकार करूं ?

इस वीणा में ध्वनि भी न मिली,

जिससे स्वर-मय झंकार करूं।

वे पत्र कहाँ, वे पुष्प कहाँ, जिनसे तेरा सन्मान करूं।

बतला दे मेरी दया मयी ! कैसे तेरा आह्वान करूं ?

वह भाव कहां कवि की कविता में,

मै जिसकी अनुहार करूं ?

वे चरण कहां हैं ओज पूर्ण,

जिन पर जीवन बलिहार करूं ?

हैं वे पथ-दर्शक वीर कहाँ, यदि दर्शन का अनुमान करूं ?

वे अटल भक्त हैं कहां 'लली' जिनका मैं गर्व गुमान करूं ?

बतला दे मेरी दयामयी ! कैसे तेरा आह्वान करूं ?

[२]

प्रथम किरण

अलस भाव त्याग सजनि,
प्रथम किरण आई ।
सुषमा की निधि अपार,
क्यों न उठे पलक भार,
तन्द्रा वश यों निहार,
सहसा मुसुकाई ।
अलस भाव त्याग सजनि,
प्रथम किरण आई ॥
जाग उठा विश्व भार,
जाग उठा प्रकृति प्यार,
उषा खोल रही द्वार,
तू क्यों अलसाई ?
अलस भाव त्याग सजनि,
प्रथम किरण आई ॥
निज निज रुचि कर शृङ्गार,
जननी मन्दिर पधार,
पुलक प्रेम से सँवार,
आरती सजाई ।
अलस भाव त्याग सजनि,
प्रथम किरण आई ॥

मैं बलि सखि बार-बार,
जागृत हो एक बार,
आँख खोल देख अरी,
नव संदेश लाई।
अलस भाव त्याग सजनि,
प्रथम किरण आई॥

[४]

मैं

वे अचेतन क्यों समझते,
सजनि! मैं तो जागती सी।
ठहर जा! टुक देख मेरे श्रान्त उर की भावनायें,
लहलहाती लालसाये, कर्म रत प्रिय कामनायें—
श्रान्त है, विश्रान्ति तज कर,
क्रान्ति प्रति पल माँगती सी।
वे अचेतन क्यों समझते,
सजनि! मैं तो जागती सी॥
जल मरा सौन्दर्य ही पर शलभ का अनुराग कैसा?
दे प्रकाश प्रदीप जलता ही रहा वह त्याग कैसा?
आज मै उस दीप पर,
अनुराग अपना वारती सी।
वे अचेतन क्यों समझते.
सजनि! मैं तो जागती सी॥

वेदना क्या है ? किसी सुख स्वप्न का इतिहास होगा,
आँसुओं में भी छिपा अलि ! नियति का परिहास होगा,
कौन उस परिहास पर,
निज चेतनायें त्यागती सी।
वे अचेतन क्यों समझते,
सजनि ! मैं तो जागती सी॥
मैं वही हूँ विश्व में जिसने कहीं पीड़ा न जानी,
मिट गये युग-युग अमिट होती रही जिसकी कहानी,
ज्योति जिसकी आज जग में,
जगमगाती जागती सी,
वे अचेतन क्यों समझते,
सजनि ! मैं तो जागती सी॥

[५]

गायक

गायक ! अलाप फिर वही तान,
जिससे मैं इतना जान सकूँ,
मेरा प्रियतम कितना महान।

मैं नहीं सुनूंगी रजनी के,
नीरव रोदन का करुण गीत,
क्यों व्यर्थ निराशावाद सुना,
तू आकर्षित कर रहा गीत।

मै नही चाहती संध्या के,
युग-युग का जर्जर प्रणय गान,
हाँ मधुर उषा आगमन ुना,
कैसा होगा कंचन विहान।

गायक ! अलाप फिर वही तान,
जिससे मैं इतना जान सकूं,
मेरा प्रियतम कितना महान।

मै योगिनि हूं न वियोगिनि हूं,
जगती की दुखिया नहीं मीत,
इन सुखद अमर आशाओं ने,
सारे जीवन को लिया जीत,

जीवन घट मे जागृति भर लूं,
कर सकू ध्येय का उचित गान,
फिर से अलाप तू वही तान।
मेरे गायक ! अनुरोध मान।

गायक ! अलाप फिर वही तान।
जिससे मैं इतना जान सकू,
मेरा प्रियतम कितना महान्।

श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान

कविता हृदय से सम्बन्ध रखती है। वह हृदय से निकलती, और हृदय को लेकर के ही अपने धर्म का पालन करती है। कविता का धर्म है, कि वह दूसरे हृदय को स्पर्श करे, और अपने हृदय को उस दूसरे हृदय मे उतार दे। कविता की सृष्टि का यही व्यापक उद्देश्य भी है। अब प्रश्न यह उठता है, कि कविता किस प्रकार अपने धर्म का पालन करती हुई, अपने उद्देश्य की सीमा पर पहुँच सकती है। जब यह प्रश्न हमारे सामने आता है, तब हम कविता मे कवि का हृदय टटोलने लगते हैं, और यह देखने लगते हैं, कि कवि ने शब्दों की तूलिका का आश्रय लेकर अपनी जिन भावनाओ का चित्र कविता मे खींचा है, उसके हृदय ने उनका हृदयंगम किया है या नहीं। उसमें उसकी अनुभूति बोल रही है, या नहीं ? उसमें उसकी अनुभूति की प्रेरणा विद्यमान है, या नहीं। अब यह बात अधिक स्पष्ट हो गई, कि कविता उसी अवस्था में अपने धर्म का पालन कर सकती है, जब कि उसमें कवि का हृदय

श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान

होगा, और होगी उसके हृदय की वास्तविक अनुभूति' अनुभूति और हृदय की सच्ची प्रेरणा के अभाव मे कविता अपने धर्म से च्युत हो जाती है। धर्म से च्युत हो जाती है, इसलिये, कि उसमें हृदय का अधिक तत्त्व नहीं होता। उसमें मस्तिष्क होता है, और फिर वह हृदय को स्पर्श नहीं करती।

कविता की असीम मर्यादा है। कवि हृदय और हृदय की सच्ची अनुभूति की ही शक्ति से कविता की मर्यादा मे स्थान पा सकता है। कवि के लिये यह आवश्यक नही, कि शब्दों के रथ पर सवार होकर कला का अनुसंधान करे। किन्तु उसके लिये यह अधिक आवश्यक है। कि वह उन्ही भावनाओं को, उन्हीं मनोयोगों को शब्दों के द्वारा कल्पना के रंग मे रंगे, उसका हृदय जिनके अधिक सन्निकट हो, और जो उसके हृदय-पिण्ड मे एक प्रकार से समाविष्ट-से हो गये हो। या यों कहना चाहिये, कि जिनका उसके हृदय से अपने आप स्रोत-सा फूटा पड़ता है। कवि जीवन की सार्थकता का यही एक प्रधान साधन भी है। साधारण से साधारण व्यक्ति भी, यदि उसमे कवित्व शक्ति है, अपने हृदय और हृदय की सच्ची अनुभूति को कविता मे ढाल कर संसार में जीवित रह सकता है। इसके विपरीत ज्ञान और मस्तिष्क की शक्ति को लेकर कविता-जगत मे प्रविष्ठ होने वाला विद्वान व्यक्ति भी कवि-समाज मे सम्मान का भाजन नहीं बन सकता। यह सच है। कि हृदय और हृदय की सच्ची अनुभूति के अतिरिक्त कवि मे और भी कई बाते होनी आवश्यक है, किन्तु

उसके साथ ही साथ यह भी सच है। कि हृदय की अनुभूति और अनुभूति की प्रेरणा ही कविता का आधार है। अनुभूति और अनुभूति की प्रेरणा के अभाव में कविता 'कविता' नहीं रह जाती, वह कुछ और हो जाती है, इसलिये हो जाती है कि वह प्राणों को नहीं छूती, हृदय को स्पर्श नहीं करती। ऐसी अवस्था में वह अपने धर्म-सिंहासन से नीचे खिसकने के साथ ही साथ अपने उद्देश्य से भी च्युत हो जाती है।

कविता के इस धर्म को सामने रख कर यदि हम श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान की कविताओं की विवेचना करते हैं, तो वे हमें सबसे आगे दिखाई देती है। उनकी समस्त रचनाओं में उनका हृदय छलकता हुआ दिखाई देता है। उनके हृदय की भावनाओं में उनके हृदय की सच्ची अनुभूति है, उनकी अनुभूति की वास्तविक प्रेरणा है। हृदय की अनुभूति और अनुभूति की वास्तविक प्रेरणा के साथ ही साथ उनमें प्रसाद गुण है। उन्होंने जो कुछ कहा है, इस ढंग से कहा है, कि सुनने वाले का हृदय उसे शीघ्र ही अपने में ढाल लेता है। उनके कथन में उनका अपना एक निरालापन, अपना एक आकर्षण, और अपना एक चमत्कार है। वह निरालापन, वह आकर्षण, और वह चमत्कार शब्दों से नहीं व्यक्त किया जा सकता। वह केवल पढ़ा जा सकता है, समझा जा सकता है, और मन ही मन अनुभव किया जा सकता है। उनकी सीधी-सादी कल्पनायें मन के विचारों को जागृत, उत्तेजित और

विकसित कर देती हैं। वे अपनी भावनाओं को ज्यों का त्यों पाठकों के हृदय में उतार देती है। हिन्दी के एक सुप्रसिद्ध समालोचक ने चौहान जी की कविताओं की आलोचना करते हुये लिखा है:-आप के हृदय मे भावों की छाप बहुत स्पष्ट पड़ती है। और उनके आवेगो मे विह्वल होने की शक्ति भी आप में है। आप जिस सहज-सुन्दर भाव से अपने भावों को पाठक के सम्मुख रख देती है, उससे पाठक क्या, समालोचक को भी हठात् ऐसा जान पड़ता है, मानों समस्त हृदय ज्यों का त्यों निकाल कर सामने रख दिया गया है।"

श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान 'हृदयवाद' की कवितायें लिखने मे हिन्दी-साहित्य मे अधिक आगे बढ़ी हुई हैं। उनकी कविताओं में भले ही कल्पनाओं की उड़ान कम हो, किन्तु वे हृदय को स्पर्श करती हैं, प्राणों मे झनझनाहट उत्पन्न करती हैं। ऐसा ज्ञात होता है, मानों सचमुच उनकी अनुभूति अपनी अनुभूति बन कर प्राणों म डोल रही हो। उदाहरण के लिये निम्नांकित पंक्तियाँ देखिये:-

'उन्हे सहसा, निहारा सामने संकोच हो आया।
मुँदी आँखे सहज ही लाज से नीचे झुकी थी मैं॥
कहूं क्या प्राणधन से यह हृदय में सोच हो आया।
वही कुछ बोल दें पहले, प्रतीक्षा म, रुकी थी मैं॥
अचानक ध्यान पूजा का हुआ झट आँख जो खोली।
नहीं देखा, उन्हे बस, सामने सूनी कुटी देखी॥

हृदय-धन चल दिये, मैं लाज से उनसे नहीं बोली।
गया सर्वस्व, अपने आप को दूनी लुटी देखी ॥

कितनी उत्कृष्ट पंक्तियाँ हैं! उत्कृष्ट पंक्तियाँ इसलिये हैं, कि इनमें कवि की सच्ची अनुभूति है। ऐसा ज्ञान होता है, मानो वास्तव में इनके भीतर किसी का हृदय बोल रहा है। सुभद्रा जी की इन पंक्तियों को आज मैंने पहली बार पढ़ा है, और मैं सच कहता हूं, कि मुझे ऐसा ज्ञात हो रहा है, मानो मैं मीरा की पंक्तियाँ पढ़ रहा हूँ। कितनी स्वभाविकता है, कितनी सरलता है। काव्यालंकारों और शब्द वैचित्र्य के अभाव मे भी उक्त पंक्तियां एक बार हृदय आन्दोलित किये बिना नहीं रहतीं सुभद्रा जी की यह सब से बडी विशेषता है। सीधे सादे शब्दों के द्वारा हृदय स्पर्शी भावों को जागृत कर देना सुभद्रा जी ही जानती हैं। इस दृष्टि से हिन्दी-साहित्य की कवित्रियों में उनका सर्व श्रेष्ट स्थान है।

अनुभूति तो सुभद्रा जी की एक अपनी वस्तु है। उनकी अनुभूति, वास्तव मे अनुभूति है। उन्होंने वास्तव में अपने जीवन से कुछ सीखा है, और सीखा है। उसके बहुत सन्निकट जाकर। उनकी अनुभूति में विशालता है, व्यापकता है। देखिये. उनकी निम्नांकित पंक्तियां! इनमे बचपन की स्वानुभूति का कैसा सुन्दर चित्रण है:—

बार बार आती है मुझको,
मधुर याद, बचपन, तेरी।

गया, ले गया, तू जीवन की,
सबसे मस्त खुशी मेरी ॥

चिन्ता-रहित खेलना-खाना,
वह फिरना निर्भय स्वच्छन्द।
कैसे भूला जा सकता है ।
बचपनका अतुलित आनन्द ॥

ऊंच-नीच का ज्ञान नही था,
छुआछूत किसने जानी ?
बनी हुई थी, अहा ! झोंपड़ी-
और चीथड़ों मे रानी ॥

किये दूध के कुल्ले मैने,
चूस अंगूठा सुधा पिया ।
किलकारी, कलोल मचाकर ।
सूना घर आबाद किया ॥

बचपन का ऐसा उत्कृष्ट चित्रण बहुत कम देखने मे आता है। कवियित्री अपने बचपन की स्मृति मे स्वयं भी शिशु हो गई है। सुभद्रा जी सचमुच शिशु जीवन का अनुभव करती हैं। वे सदैव शिशु की भांति सरल, सहृदय और चिन्ता-भावनाओ से दूर रहना चाहती हैं। किन्तु जीवन तो एक स्थान पर स्थिर नही रहता। उसका काम तो है आगे बढ़ना। 'शिशुपन' की चाह होने पर भी जब वह सुभद्रा जी से छूट जाता है, तब सुभद्रा जी अपने उसी स्वाभाविक स्वर में कहती हैं:—

वह सुख का साम्राज्य छोड़ कर,
मै मतवाली बड़ी हुई ।
लुटी हुई, कुछ ठगी हुई-सी,
दौड़ द्वार ।पर खड़ी हुई ॥
लाज भरी आंखे थीं मेरी,
मन में उमँग रंगीली थी ।
तान नसीली थी कानों में,
चंचल छैल छबीली थी ॥
दिल मे एक चुभन-सी थी,
यह दुनिया सब अलबेली थी,
मन मे एक पहेली थी, मैं,
सब के बीच अकेली थी ।

शिशु पन कवियित्री के साथ बहुत से लोग थे। माता थे, पिता थे। भाई थे, बन्धु थे। किन्तु जीवन जब शिशुपन को छोड़ कर आगे चलता है, और यौवन के प्रथम चरण में प्रवेश करता है, तब कवियित्री अपने को एक विचित्र संसार मे पाती है। उसे उसका अपना जीवन बदला हुआ दिखाई देता है। मन में उमंगों और अभिलाषाओं के होने पर भी वह संसार मे अकेली होने के कारण चिन्तित हो उठती है। किन्तु कुछ ही देर के पश्चात् उसकी चिन्ता-भावना बदल जाती है, और वह कह उठती है:-

सब गलियाँ इसकी भी देखीं,
इसकी खुशियाँ न्यारी है।
प्यारी, प्रीतम की रंग-रलियों,
की स्मृतियाँ भी प्यारी है।

किन्तु यहाँ कवियित्री का मन नहीं रमता। कुछ ही देर में वह जीवन से व्याकुल हो जाती है, और पुनः कह उठती है:-

माना मैंने युवा-काल का,
जीवन ख़ूब निराला है।
आकांक्षा, पुरुषार्थ, ज्ञान का,
हृदय मोहने वाला है॥
किन्तु यहाँ झंझट है भारी,
युद्ध क्षेत्र संसार बना।
चिन्ता के चक्कर में पड़कर,
जीवन भी है भार बना।

कवियित्री जीवन के विभिन्न अवस्थाओं मे प्रवेश करके उनका अनुभव करती है, और उसका हृदय पुनः शिशुपन के लिये तड़प उठता है। शिशुपन की सी सरलता, और शिशुपन की सी विश्ववन्धुता उसे जीवन की किसी अवस्था में नहीं प्राप्त होती, और वह फिर अपने 'शिशुपन' की याद करने लगती है। वह अपने उस शिशुपन को 'शिशुओं' में खोजती है, और उसमे मिल जाने का प्रयत्न करती है। देखिये, क्या यह सच नहीं है:-

मैं बचपन को बुला रही थी,
बोल उठी विटिया मेरी।
नन्दन-वन-सी फूल उठी,
वह छोटी-सी कुटिया मेरी॥
मैं भी उसके साथ खेलती,
खाती हूँ, तुतलाती हूं।
मिल कर उसके साथ स्वयं;
मैं भी बच्ची बन जाती हूं।

सुभद्रा जी की इन पंक्तियों ने उन्हे हिन्दी-साहित्य में अमर बना दिया है। जीवन की विभिन्न अवस्थाओं का जैसा सुन्दर चित्रण उन्होंने अपनी उक्त पंक्तियों मे किया है, वैसा सुन्दर और सजीव चित्रण बहुत कम देखने को मिलता है।

सुभद्रा जी की कविताओं में जहाँ विश्व-भावना की अधिकता है, वहाँ वे अपने राष्ट्र को भी नहीं भूल सकी हैं। यद्यपि विश्वभावना को लेकर चलने वाले कवि और कवियित्री के लिये, यह एक निम्न कोटि का स्थान है, किन्तु कवि का विशाल और करुण-हृदय अपने राष्ट्र की पीड़ित उद्गार को कैसे उपेक्षा की दृष्टि से देख सकता है, और ऐसी अवस्था में जब कि वह स्वयं राष्ट्र के लिये अपना सब कुछ दे देने के लिये तैयार हो। सुभद्रा जी को भी हम इसी अवस्था में पाते हैं। सुभद्रा जी श्रेष्ट कवियित्री होने के साथ ही साथ राष्ट्रीय कार्य कर्मी भी हैं। फिर भी वे अपने राष्ट्र को कैसे भूल सकती हैं? उन्होंने अपने

जीवन को ही राष्ट्र में मिला दिया है। अतः उनकी राष्ट्रीय-कवितायें भी उनकी जीवन की कवितायें हैं। उनकी रष्ट्रीय कविताओं मे भी एक विचित्र चमत्कार है, एक विचित्र ओजस्विता है। राष्ट्रीय दृष्टि से उनकी 'झाँसी की रानी' वाली कविता सबसे अधिक ओजस्विनी और सुन्दर कही जाती है। इसमे सन्देह नहीं, कि वह है भी अधिक ओजस्विनी। सुभद्रा जी ने अपनी उस कविता में झाँसी की रानी का जो चित्रण किया है, वह बहुत ही सफल और सजीव है। उसे पढ़ते ही हृदय में साहस और उत्साह की तरंगें तरंगित होने लगती हैं। ऐसा मालूम होता है, मानो झाँसी की रानी स्वयं अपने वास्तिविक रूप में सामने खड़ी हुई है।

सुभद्रा जी अपने राष्ट्रीय भावों को समय-समय पर विभिन्न रसों से सींचती हैं, और सींचती हैं, बड़ी ही सफलता तथा बड़े ही कौशल के साथ। कही तो वे अपने राष्ट्र के लिये अपने हृदय की वेदना प्रगट करती हैं, और कहीं अपनी ओजस्विनी वाणी में वीर-रस की सृष्टि करती है। कहीं करुणा की धारा बहाती है, तो कहीं लोगों को प्रेम-संगीत सुनने के लिये विवश कर देती है। ऐसा ज्ञात होता है, सुभद्रा जी का सभी रसो के ऊपर कुछ न कुछ आधिपत्य अवश्य है। करुणा रस का उनका एक सुन्दर चित्रण देखिये:—

बहन आज फूली समाती न मन में।
तड़ित आज फूली समाती न घन में॥

घटा है न फूली समाती गगन में।
लता आज फूली समाती न बन में।।
मैं दो बहन किन्तु भाई नहीं है ।
है राखी सजीं पर कलाई नहीं है।।
है भादो घटा किन्तु छाई नहीं है।
नही है खुशी पर रुलाई नहीं है ।।

करुण रस की ये पंक्तियाँ किसी भी साहित्य को अधिक गौरवान बना सकती हैं।

श्रीमती सुभद्रा कुमारी का जन्म संवत् १९६९ में प्रयाग में हुआ था। इनके पिता का नाम ठाकुर रामनाथ सिंह जी था। संवत् १९७६ ई० में इनका विवाह खण्डवा-निवासी ठाकुर लक्ष्मण सिंह जी चौहान बी० ए० एल० एल० बी० के साथ हुआ। उस समय ये प्रयाग के क्रास्थवेट गर्ल्स हाई स्कूल मे 'शिक्षा प्राप्त करती थीं। विवाह के पश्चात् भी इनका अध्ययन जारी रहा। असहयोग के जमाने में इन्होंने अपना पढ़ना छोड़ दिया। पढ़ना छोड़ कर ये अपने पति के साथ देश की सेवा में लग गईं, और तब से लेकर आज तक बराबर देश की सेवा में संलग्न हैं। इस समय आप कांग्रेस की ओर से मध्य प्रान्तीय असेम्बली की माननीया सदस्या भी हैं।

सुभद्रा जी बचपन ही से कविता कर रही हैं। इनकी बचपन की कविताओं में ही इनकी सर्वतोमुखी-प्रतिभा की झलक मिलती थीं। जिस समय ये पढ़ती थीं, उसी समय मासिक-पत्र

पत्रिकाओं में इनकी कविताओं की धूम मची रहती थी। जीवन के साथ ही साथ इनकी कविता भी विकसित होती गई, और इतनी विकसित हो गई, कि वह साहित्य-जगत की एक स्थायी सम्पत्ति बन गई। आप कवियित्री ही नहीं हैं, सुन्दर कहानी लेखिका भी हैं। कविताओं की तरह आपकी कहानियां भी बड़ी ही हृदय स्पर्शनी और भावमयी होती हैं। आप को दो बार पांच-पांच सौ रुपये का सेकसरिया पुरस्कार प्राप्त हो चुका है। पहला पुरस्कार आप की कविता-पुस्तक 'मुकुल' पर और दूसरा आप की कहानी-पुस्तक 'बिखरेमोती' पर प्राप्त हुआ है। हिन्दी-जगत की आप निधि हैं, और आप से हिन्दी-जगत को अभी बड़ी-बड़ी आशायें हैं। नीचे हम आप की कुछ कवितायें उद्धृत कर रहे हैं। पाठक देखेंगे, कि उसमें विश्व-भावना के साथ ही साथ कितनी उच्च कोटि की देशभक्ति है:—

[१]

कलह-कारण

कडी आराधना करके बुलाया था उन्हें मैंने।
पदों को पूजने के ही लिये थी साधना मैंने॥
तपस्या नेम व्रत करके रिझाया था उन्हें मैंने।
पधारे देव, पूरी हो गई, आराधना मेरी॥
उन्हें सहसा निहारा सामने, संकोच हो आया।
मुँदी आँखें, सहज ही लाज से, नीचे झुकी थी मैं॥
कहूँ क्या प्राणधन से यह हृदय में सोच हो आया।

वहीं कुछ बोल दें पहले प्रतीक्षा में रुकी थी मैं ॥
अचानक ध्यान पूजा का हुआ, झट आँख जो खोली ।
नहीं देखा उन्हें, बस सामने सूनी कुटी देखी ॥
हृदय-धन चल दिये, मैं लाज से उनसे नहीं बोली ।
गया सर्वस्व, अपने आपको दूनी लुटी देखी ॥

[२]

चलते समय

तुम मुझे पूछते हो 'जाऊँ' ?
मैं क्या जवाब दूँ तुम्हीं कहो ?
'जा'...कहते रुकती है जबान,
किस मुँह से तुमसे कहूँ रहो ?

सेवा करना था जहाँ मुझे,
कुछ भक्ति-भाव दरसाना था ।
उन कृपा—कटाक्षों का बदला,
बलि होकर जहाँ चुकाना था ॥

मैं सदा रूठती ही आई,
प्रिय ! तुम्हें न मैंने पहचाना ।
वह मान बाण-सा चुभता है,
अब देख तुम्हारा यह जाना ॥

[३]

ठुकरा दो या प्यार करो
देव ! तुम्हारे कई उपासक

कई ढंग से आते हैं।
सेवा में बहुमूल्य भेंट ले,
कई रंग के लाते हैं॥

धूमधाम से साज बाज से,
मन्दिर मे वे आते हैं।
मुक्ता मणि बहुमूल्य वस्तुयें,
लाकर तुम्हे चढ़ाते हैं॥

मैं ही हूं गरीबिनी ऐसी,
जो कुछ साथ नहीं लाई।
फिर भी साहस कर मन्दिर में,
जा करने को आई॥

धूप-दीप नैवेद्य नहीं है,
झाँकी का शृंगार नहीं।
हाय! गले में पहनाने को,
फूलों का भी हार नहीं॥

मै कैसे स्तुति करूँ तुम्हारी,
है स्वर में माधुर्य नहीं।
मन का भाव प्रगट करने को,
वाणी में चातुर्य नहीं॥

नहीं दान है, नहीं दक्षिणा,
खाली हाथ चली आई।

पूजा की विधि नहीं जानती,
फिर भी नाथ ! चली आई ॥
पूजा और पुजापा प्रभुवर !
इसी पुजारिन को समझो ।
दान दक्षिणा और निछावर,
इसी भिखारिन को समझो ॥
मैं उन्मत्त, प्रेम का लोभी,
हृदय दिखाने आयी हूं ।
जो कुछ है, बस यही पास है,
इसे चढ़ाने आयी हूं ॥
चरणों पर अर्पित है, इसको,
चाहो तो स्वीकार करो ।
यह तो वस्तु तुम्हारी ही है,
ठुकरा दो, या प्यार करो ॥

[४]

मेरा नया बचपन

बार-बार आती है मुझको,
मधुर याद बचपन तेरी ।
गया, ले गया, तू जीवन की,
सबसे मस्त खुशी मेरी ॥
चिन्ता-रहित खेलना खाना,
वह फिरना निर्भय स्वच्छन्द ।

कैसे भूला जा सकता है,
बचपन का अतुलित आनन्द ॥
ऊँच नीच का ज्ञान नहीं था,
छुआ-छूत किसने जानी ?
बनी हुई थी अहा ! झोपड़ी,
और चीथड़ों में रानी ॥
किये दूध के कुल्ले मैंने,
चूस अँगूठा सुधा पिया ।
किलकारी कल्लोल मचा कर,
सूना घर आबाद किया ॥
रोना और मचल जाना भी,
क्या आनन्द दिखाते थे !
बड़े-बड़े मोती से आँसू,
जयमाला पहनाते थे ॥
मैं रोयी.माँ काम छोड़ कर,
आयी, मुझको उठा लिया ।
झाड-पोंछ कर चूम-चूम,
गीले गालों को सुखा दिया ॥
दादा ने चन्दा दिखलाया,
नेत्र-नीर द्रुत चमक उठे ।
धुली हुई मुसकान देखकर,
सब के चेहरे चमक उठे ॥

वह सुख का साम्राज्य छोड़ कर,
मैं मतवाली बड़ी हुई।
लुटी हुई, कुछ ठगी हुई सी,
दौड़ द्वार पर खड़ी हुई॥

लाज भरी आँखें थीं मेरी,
मन में उमँग रंगीली थी।
तान रसीली थी कानों मे,
चंचल छैल छबीली थी॥

दिल में एक चुभन-सी थी,
यह दुनिया सब अलबेली थी।
मन में एक पहेली थी,
मैं सब के बीच अकेली थी॥

मिला, खोजती थी, जिसको,
हे बचपन! ठगा दिया तू ने।
अरे! जवानी के फंदे में,
मुझको फँसा दिया तू ने॥

सब गलियाँ उसकी भी देखी,
उसकी खुशियाँ न्यारी हैं।
प्यारी, प्रीतम की रंग-रलियों,
की स्मृतियाँ भी प्यारी हैं॥

माना मैंने युवा काल का,
जीवन ख़ूब निराला है।

आकांक्षा पुरुषार्थ ज्ञान का,
उदय मोहने वाला है।
किन्तु यहाँ झंझट है भारी,
युद्ध क्षेत्र संसार बना।
चिन्ता के चक्कर में पड़ कर,
जीवन भी है भार बना॥

आजा बचपन! एक बार फिर;
दे दे अपनी निर्मल शान्ति;
व्याकुल व्यथा मिटाने वाली;
वह अपनी प्राकृत विश्रान्ति॥
वह भोली सी मधुर सरलता;
वह प्यारा जीवन निष्पाप।
क्या फिर आकर मिटा सकेगा;
तू मेरे मन का सन्ताप॥

मैं बचपन को बुला रही थी;
बोल उठी बिटिया मेरी।
नन्दन-वन सी फूल उठी;
यह छोटी-सी कुटिया मेरी॥
'माँ ओ' कह कर बुला रही थी;
मिट्टी खा कर आयी थी;
कुछ मुँह में कुछ लिये हाथ में;
मुझे खिलाने आयी थी॥

पुलक रहे थे अंग; दृगों में;
कौतूहल था छलक रहा ।
मुँह पर थी आह्लाद लालिमा;
विजय गर्व था झलक रहा ॥

मैंने पूछा; 'यह क्या लायीं' ?
बोल उठी; वह 'माँ का ओ।'
हुआ प्रफुल्लित हृदय खुशी से;
मैंने कहा, "तुम्हीं खाओ।"

पाया मैंने बचपन फिर से;
बचपन बेटी बन आया ।
उसकी मंजुल मूर्ति देख कर;
मुझ में नव-जीवन आया ॥

मैं भी उसके साथ खेलती:—
खाती हूं, तुतलाती हूँ ।
मिल कर उसके साथ स्वयं;
मैं भी बच्ची बन जाती हूँ ॥

जिसे खोजती थी बरसों से;
अब जाकर उसको पाया ।
भाग गया था मुझे छोड़ कर;
वह बचपन फिर से आया ॥

[५]

झाँसी की रानी

सिंहासन हिल उठे, राजवंशों ने भृकुटी तानी थी।
बूढ़े भारत में भी आई फिर से नई जवानी थी॥
लुटी हुई आज़ादी की क़ीमत सब ने पहचानी थी।
दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी॥
चमक उठी सन् सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी।
बुन्देले हर बोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी–
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

२

कानपूर के नाना की मुँह बोली बहिन 'छबीली' थी।
लक्ष्मीबाई नाम पिता की वह सन्तान अकेली थी॥
नाना के संग पढ़ती थी वह नाना के संग खेली थी।
बरछी ढाल कृपाण कटारी उसकी यही सहेली थी॥
वीर शिवाजी की गाथायें उनको याद ज़बानी थी।
बुन्देले हर बोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी–
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

३

'लक्ष्मी थी, या दुर्गा थी, वह स्वयं वीरता की अवतार।
देख मराठे पुलकित होते उसकी तलवारों के वार॥
नक़ली युद्ध व्यूह की रचना और खेलना खूब शिकार।
सैन्य घेरना, दुर्ग तोडना, ये थे उसके प्रिय खेलवार॥

महाराष्ट्र कुल देवी इसकी भी आराध्य भवानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी–
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

४

हुई वीरता की वैभव के साथ सगाइ झाँसी में।
व्याह हुआ रानी बन आई लक्ष्मी बाई झाँसी में॥
राज महल में बजी बधाई खुशियां छाई झाँसी में।
सुभट बुँदेलों की विरुदावलि-सी वह आई झांसी में॥
चित्रा ने अर्जुन को पाया शिव को मिली भवानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी–
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी॥

५

उदित हुआ सौभाग्य मुदित महलों में उजियाली छाई।
किन्तु काल गति चुपके-चुपके काली घटा घेर लाई॥
तीर चलाने वाले कर में उसे चूड़ियां कब भाईं।
रानी विधवा हुई हाय! विधि को भी नहीं दया आई॥
निःसन्तान मरे राजा जी रानी शोक समानी थी।
बुन्देले हरबोलों के ख हमने सुनी कहानी थी–
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

६

रानी गई सिधार; चिता अब उसकी दिव्य सवारी थी।
मिला तेज से तेज तेज की वह सच्ची अधिकारी थी॥

अभी उम्र कुल तेइस की थी मनुज नहीं अवतारी थी।
हमको जीवित करने आई बन स्वतंत्रता नारी थी॥
दिखा गई पथ; सिखा गई हमको जो सीख सिखानी थी
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी—
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

[६]

साक़ी

अरे ढाल दे पी लेने दे ! दिल भर कर प्यारे साकी।
साध न रह जाये कुछ इस छोटे से जीवन की बाक़ी॥
ऐसी गहरी पिला, कि जिससे रंग नया छा जावे।
अपना और पराया भूलूँ तू ही एक नज़र आवे॥
ढाल-ढाल कर पिला; कि जिससे मतवाला होवे संसार।
साक़ी ! इसी नशे मे कर लेंगे भारत-माँ का उद्धार॥

श्रीमती महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा हिन्दी-साहित्य की सर्व श्रेष्ठ कवियित्री हैं। कवियित्रियों में ही नहीं, पुरुष कवियों मे भी किसी अंश में उनका स्थान सर्वोपरि है। वे अपनी सुललित, करुण, और व्यापक भावनाओं के साथ बहुत आगे बढ़ गई हैं। हम तो उन्हे हिन्दी-साहित्य में वहां देख रहे हैं, जहाँ विश्व के बडे-बड़े कवि है। उनकी सुन्दर और मानवी भावनाओं से लसी हुई रचनायें प्रान्तीय भाषाओं में लिखी गई रचनाओं से अभिमान के साथ टक्कर लेती हुई सुदुर विश्व में भी छिटक जाती हैं। एक गुलाम देश और गुलाम देश के मनुष्यों के साहित्य की कवियित्री होने के कारण, संभव है; महादेवी जी की रचनायें विश्व के हृदय मे स्थान न प्राप्त कर सकी हों, किन्तु यह निर्विवाद है, कि उनमें विश्व के हृदय मे स्थान प्राप्त करने की सजीव शक्ति है। हमारा तो यह दृढ़ विश्वास है, कि जब कभी विश्व के सहृदय काव्य-मनीषी हिन्दी साहित्य की युग परिवर्तन कारी रचनाओं का अध्ययन करेंगे, तब हम देखेंगे, कि हिन्दी-साहित्य की महादेवी जी विश्व के श्रेष्ठ कवियों की पंक्ति में
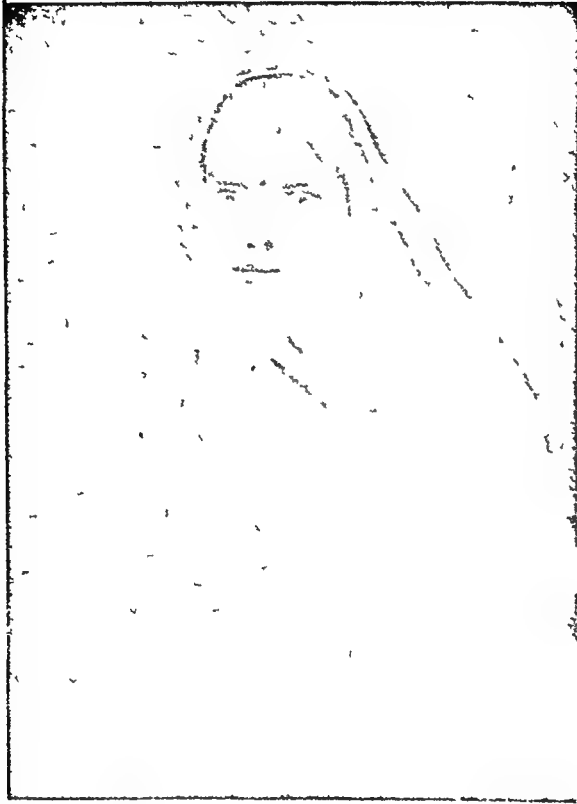
श्रीमती महादेवी वर्मा

विराजमान हैं। यह इसलिये, कि उनमें विश्व भावना है, हृदय की विशालता है। उनकी कल्पना राष्ट्र और समाज से अधिक ऊपर उठ कर मानव जगत में चिर सत्य का अनुसन्धान करती हैं। उस सत्य का अनुसंधान करती है जो जगत के समस्त 'असत्य' प्राणी मात्र में सत्य के रूप मे विराज मान है, और जिसकी 'अव्यक्त' और 'अदृश्य' ज्योति अंधकार पूर्ण जगत को आलोकित किये हुए है।

महादेवी जी उस सत्य को पहचानती है। या यों कहना चाहिये, कि उसे परखने का प्रयास करती हैं। उनका प्रयास ठीक वैसा ही है; जैसा मीरा का प्रयास था। किसी अंश में उनका प्रयास मीरा के प्रयास से भी अधिक व्यापक, अधिक मानवी, और अधिक वेदना शील हैं। मीरा का 'सत्य' कृष्ण के रूप में विराजमान था; और कृष्ण केवल हिन्दू मात्र के आराध्य देव है; किन्तु महादेवी का 'सत्य' समस्त विश्व का सत्य है। वास्तव में वह सत्य है। वह किसी एक विशेष व्यक्ति में केन्द्रित न रह कर विश्व के अणु अणु में विराजमान है। महादेवी जी उसी 'सत्य' के गीत गाती हैं। वही 'सत्य' उनका प्रियतम है, वही उनका आराध्य देव है। वे इस असुन्दर और 'असत्य' संसार में अपनी उसी 'चिर सुन्दर' और 'चिर सत्य' को खोजती हैं। उनकी समस्त करुण-रागिनी उसी चिर सत्य के लिये हैं। उनकी कल्पनायें सावन के बादलों की भांति वेदना और करुणा बरसाती हुई उसी 'चिर सत्य' और 'चिर

सुन्दर' की खोज में जगत के अणु-अणु को बजाती हैं, और उनमें झनझनाहट उत्पन्न करती है। उनका सत्य-प्रियतम, अमूर्त है, अदृश्य है, अव्यक्त है, और असीमित है। महादेवी जी अपने इसी प्रियतम के पास पहुँचना चाहती हैं, और पहुँच कर उसमें मिल जाना चाहती हैं। किन्तु मिल नहीं पातीं, पहुँच नहीं पाती उनकी वेदना और करुण शील काव्य का यही एक रहस्य है।

उनकी वेदना आध्यात्मिक है, सत्य है। सत्य इसीलिए है, कि वह आध्यात्मिक है, और उसमें है समाकुल आत्मा का परमात्मा के लिये प्रणय-निवेदन। आत्मा, अपने प्रियतम परमात्मा से, जो सत्य है, जो रुचिर है, बिछुड़ी हुई प्रियतमा की भाँति संसार में विचरण कर रही है। उसके प्रियतम का वह संसार इस संसार से भिन्न है। वह नित्य है, वह अमर है। महादेवी जी आत्मा के रूप में उस संसार को देख तो नहीं पातीं, किन्तु उस 'सत्य' संसार की कल्पना अवश्य करती हैं। वे अपनी कविता में उसी संसार को बसाती हैं, और उसी संसार का निरूपण करती हैं। उन्होंने अपने प्रियतम के उस संसार को देखा तक नहीं है, किन्तु वे अपनी अभिनव उपमाओं और रूपकों के द्वारा आँखों के सामने उसका एक चित्र अवश्य खड़ा कर देती हैं, जो वास्तव में उस संसार ही की भाँति रुचिर; सुखद और सत्य-सा ज्ञात होता है। रुचिर, सुखद इसलिये ज्ञात होता है, कि वह सत्य है, और वह सत्य इसलिये है, कि उसमें अखिल प्रकृति के मानव जीवन

की प्रतिच्छवि है। महादेवी जी अपने उसी अमिट संसार में करुण कल्पनाओं के सूत्र में मानव हृदय को गूँथती हैं। उनका हृदय विश्व का हृदय है, उनकी भावना विश्व की भावना है। वे प्रकृति और संपूर्ण जगत को अपने से दूर नहीं देखतीं। वे देखती हैं, कि प्रकृति, जगत, और जीवन के मध्य में उनका प्रियतम स्थिर है; और वह एक ही तार में, एक ही सूत्र में; जगत के हृदय-हृदय को गूँथे हुये है। अतः महादेवी जी भी जगत के हृदय-हृदय में, प्रकृति के कण-कण में अपने प्रियतम को खोजती हैं और भाव साम्यता की शक्ति से जीवन, प्रकृति और जगत को भेद कर उसके सन्निकट पहुंचने का प्रयत्न करती हैं।

महादेवी जी इस विश्व-भावना को लेकर चलने वाली हिन्दी-साहित्य मे एक कवियित्री हैं। जिस प्रकार उनका प्रियतम सत्य है, सुन्दर है, अमिट है, उसी प्रकार महादेवी जी की काव्य कल्पनायें भी अधिक सुन्दर और अमिट सी हैं। अमिट इसलिये हैं, कि वे किसी सत्य का चित्रण करती हैं, किसी अमर की छवि उतारती है। वह 'सत्य' वह 'अमर' महादेवी जी का प्रियतम है, आराध्य देव हैं, और है वह उनके सन्निकट होने पर उनसे बहुत दूर, इसीलिये महादेवी जी की कविताओं में, कल्पनाओं में, करुणा है, वेदना है, विरह है, विषाद है ! उन्हे विषाद बहुत प्यारा लगता है। और प्यारा इस लिये लगता है, कि उसको सृष्टि उनमें अपने प्रियतम के वियोग में हुई है। महादेवी जी स्वयं अपने इस

दुःख के सम्बन्ध में कहती हैं:–"दुख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है, जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुंचा सके, किन्तु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाये बिना नहीं गिर सकता। मनुष्य सुख को अकेला भोगना चाहता है, परन्तु दुःख सब को बाँट कर—विश्व जीवन मे अपने जीवन को, विश्व-वेदना में अपनी वेदना को, इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक जल बिन्दु समुद्र में मिल जाता है, कवि का मोक्ष है।

अपने दुःखवाद के सम्बन्ध में ये हैं महादेवी जी के विचार! कितने उच्चकोटि के विचार हैं। जिस कवि के इतने उच्च कोटि के विचार हों, क्या कोई उसे विश्व कवि के सिंहासन से दूर रख सकता है! महादेवी जी ने इसी विशालता के साथ अपने दुःखवाद का चित्रण भी किया है। उनके इसी दुःखवाद के सम्बन्ध में हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि और लेखक राय कृष्णदास जी उनकी 'नीरजा' नामक पुस्तक की भूमिका में लिखते हैं:—श्रीमती वर्मा-हिन्दी-कविता के इस वर्तमान युग की वेदना-प्रधान कवियित्री हैं। उनकी काव्य-वेदना आध्यात्मिक है। इसमें आत्मा का परमात्मा के प्रति आकुल प्रणय-निवेदन है। कवि की आत्मा, मानों इस विश्व में बिछुड़ी हुई प्रेयसी की भाँति प्रियतम का स्मरण करती है। उसकी

दृष्टि से, विश्व की सम्पूर्ण प्राकृतिक शोभा-सुषमा एक अलौकिक चिर सुन्दर की छाया मात्र है। इस प्रतिबिम्ब-जगत को देख कर कवि का हृदय, उसके सलोने बिम्ब के लिये ललक उठा है। मीरा ने जिस प्रकार उस परम-पुरुष की उपासना सगुण रूप मे की थी, उसी प्रकार महादेवी जी ने अपनी भावनाओं में उसकी उपासना निर्गुण रूप मे की है। उसी एक का स्मरण, चिन्तन, एवं उसके तादात्म्य होने की उत्कण्ठा महादेवी जी की कविताओं के उपादान हैं!"

महादेवी जी की समस्त रचनाओं में उत्कृष्ट दुःखवाद है, और उनके दुःखवाद मे आध्यात्मिकता है, दार्शनिकता है। वे आध्यात्मिक वियोगिनी हैं। वियोगिनी ही की भाँति वे अपने प्रियतम का आह्वान करती हैं, उसके स्वरूप का निरूपण करती हैं, और करती हैं, अपने शृङ्गार को सजग। इसके लिये कहीं वे वेदना का अंचल पकड़ती हैं, कहीं करुणा की घनी छाया में बैठती है, और कहीं अपने उल्लसित मान-अभिमान भी व्यक्त करती हैं। यह सब है वियोगिनी ही की भाँति, किन्तु है एक सफल आध्यात्मिक-वियोगिनी की भाँति। जो कुछ है, बहुत ऊँचा है, बहुत विशाल है। साधारण पाठक का साहस नहीं, कि वह वहाँ पहुंच सके, उसकी वास्तविकता को परख सके। किन्तु उसमें एक तथ्य है, एक सत्य है, और है, वह बहुत ही सुन्दर, बहुत ही कल्याणकारी। निम्नांकित पंक्तियों मे उसका चित्र देखिये:—

शृङ्गार कर लेरी सजनि !
नव क्षीर निधि की ऊर्मियों से,
रजत झीने मेघ सित,
मृदु फेन मय मुक्तावली से,
तैरते तारक अमित;
सखि ! सिहर उठती रश्मियों का,
पहिन अवगुण्ठन अवनि ।

\+ + +

तिमिर पारावार में,
आलोक प्रतिमा है अकम्पित,
आज ज्वाला से बरसता,
क्यों मधुर घन सार सुरभित ?
सुन रही हुं एक ही
झंकार जीवन में प्रलय में ?
कौन तुम मेरे हृदय में ?

\+ + +

कण-कण उर्वर करते लोचन,
स्पन्दन भर देता सूना पन,
जग का धन मेरा दुख निर्धन,

\+ + +

क्यों वह प्रिय आता पार नहीं ?
शशि के दर्पण में देख-देख,

मै ने सुलझाये तिमिर-केश,
गूँथे चुन तारक-पारिजात,
अवगुंठन कर किरणें अशेष,
क्यों आज रिझा पाया उसको,
मेरा अभिनव शृंगार नहीं ॥

\+ \+ \+

मैं नीर भरी दुख की बदली !
मैं क्षितिज भृकुटि पर घिर धूमिल,
चिन्ता का भार बनी अविरल,
रज-कण पर जल-कण हो बरसी,
नव जीवन-अंकुर बन निकली !

यह है महादेवी जी का दुःख वाद। हमारा तो यह दृढ़ मत है, कि महादेवी जी अपने दुःख वाद से मनुष्य को मनुष्य बनाने का प्रयत्न कर रही हैं। उनका दुःख, उनकी वेदना, उनका वियोग, अपने लिये नहीं, समस्त मानव जगत के लिये हैं। वे एक साधिका की भाँति अखिल जगत को प्रेम और करुणा का सन्देश सुना रही है। उनके प्रेम में साम्यता है, विशालता है। संसार यदि उनकी प्रेम-साम्यता और विशालता के तत्व को समझने का प्रयत्न करे तो इसमें सन्देह नहीं, कि संसार में बसने वाले मनुष्यों को मनुष्य बनने मे बड़ी सहायता प्राप्त होगी।

महादेवी जी की काव्य-कल्पनाओं के ऊपर अभी एक लेख 'देशदूत' में प्रकाशित हुआ था। उस लेख से महादेवी जी की

कविताओं और उनके दुःख वाद पर अधिक प्रकाश पड़ता है। अतः हम उस लेख के लेखक श्रीयुत ठा० श्रीनाथ सिंह जी की अनुमति से उसका कुछ अंश यहाँ उद्धृत कर रहे हैं:—

हम हिन्दी वालों को महादेवी वर्मा का गर्व होना चाहिये। उन्होंने अपनी इस अथक साहित्यिक साधना के द्वारा मीरा को ही नवीन जन्म नहीं दिया, विश्व-साहित्य मे भी हिन्दी का मस्तक ऊँचा किया है। अपनी परिमार्जित भाषा, गम्भीर चिन्तना, और कोमल कल्पना के द्वारा इन्होंने जिस गीत-साहित्य का सृजन किया है, उसने मीरा को भी अप्रतिभा कर दिया है। मीरा महादेवी जी से उतना ही पीछे रह गई हैं, जितना कि समय उन्हें छोड़ आया है।

मीरा और महादेवी; दोनों ने विरह के गीत गाये हैं। किन्तु फिर भी दोनों में थोड़ा अन्तर है। मीरा के प्रियतम की एक तसवीर हो सकती है, उसे देख लेने पर मीरा जी तृप्ति का अनुभव कर सकती हैं, वह प्रियतम मानव रूपधारी भी हो सकता है; किन्तु महादेवी का प्रियतम, मीरा के प्रियतम से कहीं अधिक रहस्यमय और पहुंच से बाहर है। या यों कहिये, कि अस्पष्ट भी है। तसवीर तो उसकी कदापि बनाई ही नहीं जा सकती। मानव-रूप को कभी यह सौभाग्य प्राप्त नहीं हो सकता, कि वह इस प्रियतम का पद प्राप्त करे। विश्व-मानव आत्मा, अपना समस्त सौन्दर्य, अपना समस्त वैभव, अपनी समस्त विनय-श्री लेकर आवे और अत्यन्त श्रद्धा से प्रेरित होकर महा-

देवी के चरणों में बिखेर दे, तब भी वे उसकी ओर दृष्टिपात नहीं करेंगी। वे तो न जाने किस अनन्त, अगोचर, अद्भुत, अस्पष्ट पर अपना मन वार चुकी हैं। उसे पाकर भी नहीं पातीं, उसे देख कर भी नहीं देखतीं। केवल उसके आने की कल्पना करती विरह के गीत गाती चली जाती हैं। उनका विरह अनन्त है, उनकी पीड़ा असह्य है, किन्तु यही उनका सहारा भी है।"

श्रीमती महादेवी वर्मा का जन्म संवत् १९६४ में फरूखाबाद में हुआ था। इनके पिता का नाम बाबू गोविन्द प्रसाद और माता का नाम हेमरानी है। संवत् १९७५ में ग्यारह वर्ष की अवस्था में इनका विवाह हो गया। विवाह हो जाने के पश्चात् समाज की संकुचित भावना के कारण आपकी शिक्षा-प्रगति में कुछ बाधा अवश्य उपस्थित हुई, किन्तु नियति आपको पुनः शिक्षा के मैदान में खींच लाई, और आप पुनः प्रयाग के क्रास्थवेट गर्ल्स कालेज में शिक्षा प्राप्त करने लगीं। प्रयाग से ही आपने बी० ए० और एम० ए० की परीक्षायें पास कीं, और इस समय आप प्रयाग में ही महिला विद्यापीठ कालेज की सुयोग्य प्रिन्सपिल हैं।

विद्यार्थी अवस्था से ही आप कविता कर रही हैं। पहले आप राष्ट्रीय कवितायें लिखा करती थीं। किन्तु जीवन के विकास के साथ ही साथ उनकी रचनाओं का भी विकास हुआ, और वे समाज तथा राष्ट्र के घेरे को तोड़ कर विश्व के विस्तृत आंगन में विचरण करने लगीं। आप की रचनाओं के चार संग्रह

पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुके हैं:—नीहार, रश्मि, नीरजा, यामा। 'यामा' सब से बड़ी पुस्तक है, और अभी हाल में प्रकाशित हो चुकी है। आप को एक बार सेकसेरिया पुरस्कार भी प्राप्त हो चुका है। आप कुछ दिनों तक 'चाँद' की सम्पादिका भी रह चुकी हैं।

निम्नांकित रचनाओं में आपकी विश्व-कल्पना का चमत्कार देखिये:—

[१]

अलि कैसे उनको पाऊँ ?

वे आँसू बन कर मेरे,
इस कारण ढुल ढुल जाते,
इन पलकों के बन्धन में,
मैं बाँध-बाँध पछताऊँ।

मेघों में विद्युत सी छवि,
उनकी बन कर मिट जाती,
आँखों की चित्रपटी में,
जिसमें मैं आँकन पाऊँ।

वे आभा बन खो जाते,
शशि किरणों की उलझन में,
जिसमें उनको कण-कण में,
ढूँढूँ पहिचान न पाऊँ।

सोते सागर की धड़कन,
बन लहरों की थपकी से;
अपनी यह करुण कहानी,
जिसमें उनको न सुनाऊँ।

वे तारक बालाओं की,
अपलक चितवन बन आते,
जिस में उनकी छाया भी,
मैं छू न सकूँ अकुलाऊँ।

वे चुपके से मानस में,
आ छिपते उच्छ्वासें बन;
जिसमें उनको साँसों मे,
देखूँ पर रोक न पाऊँ!

वे स्मृति बन कर मानस में,
खटका करते हैं निशि दिन,
उनकी इस निष्ठुरता को,
जिसमें मैं भूल न जाऊँ।

[२]

तुम्हें बाँध पाती सपने में!
तो चिर जीवन-प्यास बुझा,
लेती उस छोटे क्षण अपने में!
सावन-सी उमड़ बिखरती,
शरद निशा सी नीम घिरती;

धो लेती जग का विषाद
ढुलते लघु आँसू-कण अपने में !
तुम्हे बाँध पाती सपने में !

मधुर राग बन विश्व सुलाती,
सौरभ बन कण कण बस जाती,
भरती मैं संसृति का क्रन्दन,
हँस जर्जर जीवन अपने में !
तुम्हें बाँध पाती सपने में !

सब की सीमा बन, सागर सी;
हो असीम आलोक-लहर सी;
तारों मय आकाश छिपा;
रखती चंचल तारक अपने में !
तुम्हे बाँध पाती सपने में !

शाप मुझे बन जाता बर सा
पतझर मधु का मास अजर सा,
रचती कितने स्वर्ग, एक,
लघु प्राणों के स्पन्दन अपने में !
तुम्हे बाँध पाती सपने में !

साँसे कहतीं अमर कहानी,
पल पल बनता अमिट निशानी,
प्रिय ! मैं लेती बाँध मुक्ति,

सौ सौ लघुतम बन्धन अपने में!
तुम्हे बाँध पाती सपने मे!

[३]

तुम मुझमें प्रिय! फिर परिचय क्या!

तारक में छवि प्राणों में स्मृति;
पलकों में नीरव पद की गति;
लघु उर में पुलकों की स्मृति;
भर लाई हूं तेरी चंचल,
और करूँ जग में संचय क्या!

तेरा मुख सहास अरुणोदय,
परछाईं रजनी विषाद मय;
यह जागृति वह नींद स्वप्न मय,
खेल खेल थक थक सोने दो,
मै समझूँगी सृष्टि प्रलय क्या!

तेरा अधर विचुम्बित प्याला,
तेरी ही स्मित मिश्रित हाला,
तेरा ही मानस मधु शाला
फिर पूछूँ क्यों मेरे साक़ी,
देते हो मधु मय, विषमय क्या!

रोम रोम मे नन्दन पुलकित,
साँस साँस जीवन शत शत,
स्वप्न स्वप्न में विश्व अपरिचित,

धो लेती जग का विषाद
ढुलते लघु आँसू-कण अपने में !
तुम्हे बाँध पाती सपने में !

मधुर राग बन विश्व सुलाती,
सौरभ बन कण कण बस जाती,
भरती मैं संसृति का क्रन्दन,
हँस जर्जर जीवन अपने में !
तुम्हें बाँध पाती सपने में !

सब की सीमा बन, सागर सी;
हो असीम आलोक-लहर सी;
तारों मय आकाश छिपा;
रखती चंचल तारक अपने मे !
तुम्हें बाँध पाती सपने मे !

शाप मुझे बन जाता वर सा
पतझर मधु का मास अजर सा,
रचती कितने स्वर्ग, एक,
लघु प्राणों के स्पन्दन अपने में !
तुम्हे बाँध पाती सपने में !

साँसे कहतीं अमर कहानी,
पल पल बनता अमिट निशानी,
प्रिय ! मैं लेती बाँध मुक्ति,

सजल रोमों में बिछे है पाँवड़े मधु स्नात से;
आज जीवन के निमिष भी दूत हैं अज्ञात से;
क्या न अब प्रिय की बजेगी,
मुरलिका मधु राग वाली !
मैं बनी मधु मास आली !

[५]

क्या नई मेरी कहानी !
विश्व का क्रण कण सुनाता,
प्रिय वही गाथा पुराना !
सजल बादल का हृदय-कण,
चू पड़ा जब पिघल भू पर,
पी गया उसको अपरिचित,
तृषित दरका पंक का उर,
मिट गई उससे तड़ित सी,
हाय वारिद की निशानी !
करुण वह मेरी कहानी !

जन्म से मृदु कंज-उर में,
नित्य पाकर प्यार लालन,
अनिल के चल पंख पर फिर,
उड़ गया जब गन्ध उन्मन,
बन गया तब सब अपरिचित,

मुझमें नित बनते मिटते प्रिय,
स्वर्ग मुझे क्या, निष्क्रिय लय क्या?
हारूँ तो खोऊ अपना पन,
पाऊं प्रियतम में निर्वासन,
जीत बनूँ तेरा ही बन्धन!
भर लाऊँ सी पी में सागर,
प्रिय! मेरी अब हार विजय क्या?
चित्रित तू मैं हूं रेखा क्रम,
मधुर राग तू मैं स्वर संगम,
तू असीम मैं सीमा का भ्रम,
काया छाया में रहस्य मय!
प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या?

[४]

मैं बनी मधु मास आली!
आज मधुर विषाद की घिर करुण आई यामिनी,
बरस सुधि के इन्दु से छिटकी पुलक की चाँदनी;
उमड़ आई री दृगों में,
सजनि कालिन्दी निराली!
रजत-स्वप्नों में उदित अपलक विरल तारावली,
जाग सुख-पिक ने अचानक मदिर पंचम तानली,
बह चली निश्वास की मृदु,
वात मलय-निकुंज-पाली!

सजल रोमों मे बिछे है पाँवड़े मधु स्नात से;
आज जीवन के निमिष भी दूत हैं अज्ञात से;
क्या न अब प्रिय की बजेगी,
मुरलिका मधु राग वाली !
मैं बनी मधु मास आली !

[५]

क्या नई मेरी कहानी !
विश्व का कण कण सुनाता,
प्रिय वही गाथा पुराना !
सजल बादल का हृदय-कण,
चू पड़ा जब पिघल भू पर,
पी गया उसको अपरिचित,
तृषित दरका पंक का उर,
मिट गई उससे तड़ित सी,
हाय वारिद की निशानी !
करुण वह मेरी कहानी !

जन्म से मृदु कंज-उर में,
नित्य पाकर प्यार लालन,
अनिल के चल पंख पर फिर,
उड़ गया जब गन्ध उन्मन,
बन गया तब सब अपरिचित,

श्रीमती तारा देवी पाण्डेय

श्रीमती तारा देवी पाण्डेय हिन्दी-संसार में एक अमर-ज्योति बन कर चमक रही हैं। आपकी श्रेष्ठ और सुललित रचनाओं के लिये हिन्दी साहित्य के हृदय में एक सम्मान-पूर्ण चाह है। आप अपनी एक-एक कविता, और कविता की एक-एक पंक्ति के द्वारा हिन्दी-साहित्य को सम्पत्ति प्रदान कर रही है। ऐसी सम्पत्ति प्रदान कर रही है, जिस पर हिन्दी-जगत गर्व कर सकता है, और जिसे वह विश्व-साहित्य की पंक्ति में बड़े अभिमान से रख सकता है। हमारा यह दृढ़ विश्वास है, कि विश्व-साहित्य की उस पक्ति में भी जहाँ बड़े बड़े अमर कला कारों की कृतियाँ रहेंगी, तारा देवी की रचनायें 'धनी' और प्रकाश दायिनी ही प्रमाणित होंगी।

तारा देवी का हृदय-कवि, उनका अपना कवि है। वह अपने स्वर में बोलता है, और अपनी भाषा में लिखता है। उसके अपने छन्द हैं, और अपने शब्द हैं। उसकी अपनी अनुभूति है, अपनी अभिव्यक्ति है। वह साहित्य के इस नूतन

श्री मती तारादेवी पाण्डेय
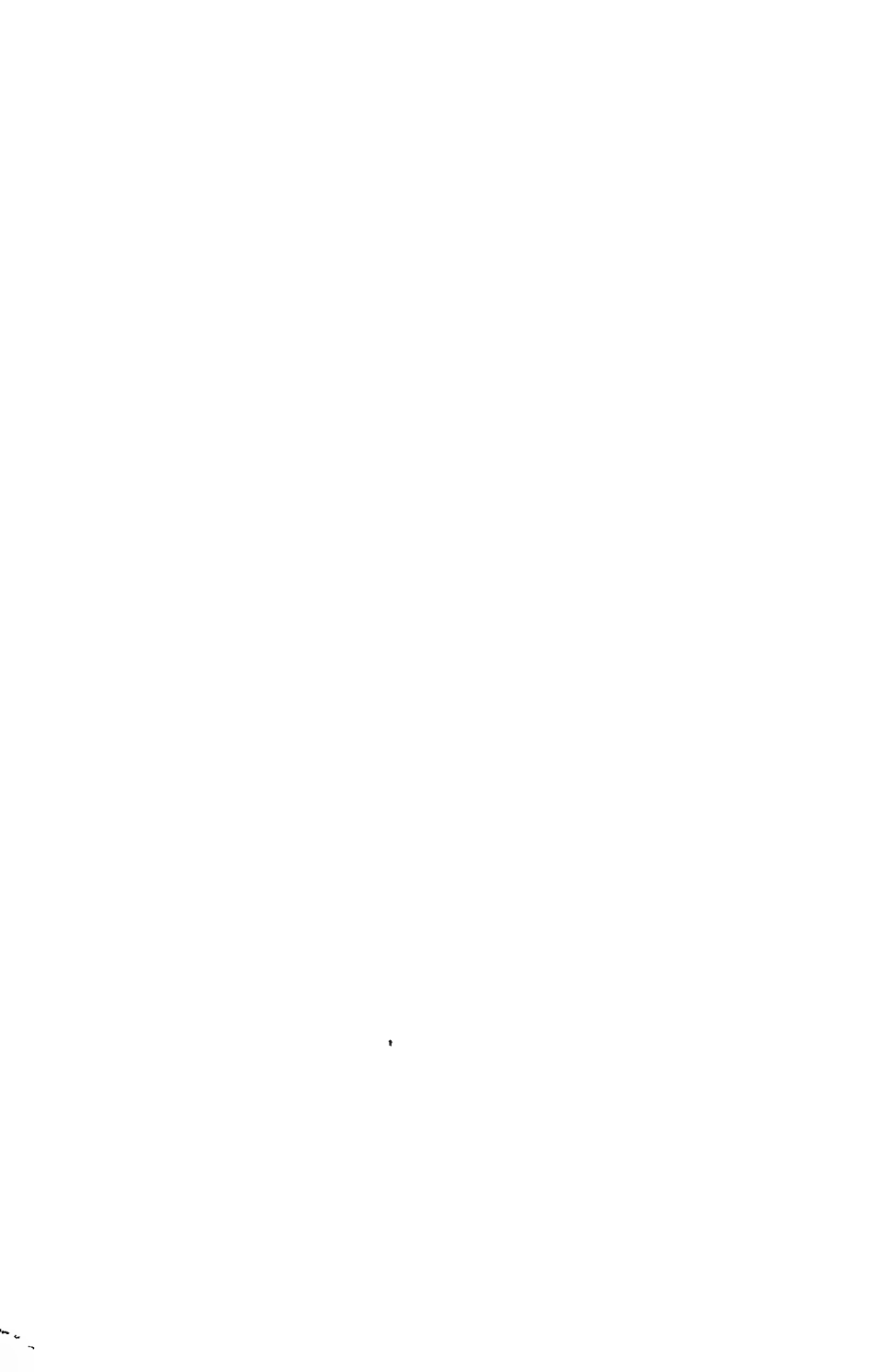
प्रवाह में, जिसमें क्रान्ति है, सक्रियता है, अपने को बहने से रोक सका है, और उसने अपने लिये एक नवीन काव्य-प्रवाह की सृष्टि की है। वह उसका हर एक प्रकार से अपना है। उसके प्रत्येक बुलबुले में उसका अपना पन है। तारा के कवि ने अपने काव्य-संसार को सजाने का प्रयत्न नहीं किया है। उसमें न श्रृंगार हैं, और न साज-बाज है, किन्तु फिर भी उसका काव्य-जगत सुन्दर है, अधिक सुन्दर है। उसकी सुन्दरता में वास्तविकता है, स्वाभाविकता है। जिस कवि का काव्य-जगत अपने आप सौन्दर्य-पूर्ण हो जाता है, वही सच्चा कवि है, वही काव्य-जगत का सच्चा कलाकार है। तारा का कवि वास्तव में 'कवि' है। वह कला का अनुसन्धान नहीं करता, कला स्वयं उसके पास दौड़ कर पहुंचती है।

तारा के कवि-जीवन के सम्बन्ध में हिन्दी के कवि सम्राट पं० अयोध्यासिंह जी उपाध्याय ने उनकी 'वेणुकी' में अपनी जो सम्मति प्रगट की है, वह अधिक सम्माननीय है। उसे उद्धृत करने के लोभ का हम संवरण नहीं कर सके, इस लिये हम उसे यहाँ उद्धृत कर रहे हैं। देखिये:—

"श्रीमती तारा पाण्डेय की रचनाओं से मे चिरकाल से परिचित हूँ। उनमे भावुकता है, औरहै सहृदयताःकी वेदनामय झंकार। संसार असार है, जीवन क्षणिक है, सुख के पथ में काँटे हैं, आनन्द की धारा भी अकलुपित नहीं। फूलों ऐसा उत्फुल्ल होने वाला संसार में कौन है, परन्तु वे भी म्लान

होते, दो दिन हँस कर जीवन-लीला समाप्त करते हैं। बात कहते कहते उनका रंग ऐसा बदलता है, कि काल की नैरंगियाँ देखकर दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है। पतग प्रेमिक है, सच्चा प्रेमिक है, प्राण हथेली पर लिये फिरता है, आँच की परवा नहीं करता, जलने से डरता नहीं; परन्तु उसकी आदर्श-प्रेमिकता का फल उसे एक दिव्य ज्योति के हाथों वह अन्धकार मिलता है, जो प्रलयान्धकार से कम नहीं। संसार के इस प्रकार के अनेक दृश्य हैं, जो वेदना मय हृदय को विचलित करते रहते हैं, उस पर प्रभाव डालते रहते हैं, और उसको ऐसे उद्गारों के प्रकट करने का अवसर देते हैं, जो इस 'वेणुकी' नामक पुस्तिका के सम्वल हैं।"

"ये बातें इस पार अर्थात् प्रत्यक्ष जगत की हैं, उस पार अर्थात् परोक्ष की बातें अज्ञात है, क्योंकि 'तत्र न वाग्गच्छति न मनोगच्छति'—न वहाँ वचन जा सकता है, न मन, फिर कोई कुछ कहे तो क्या कहे। किन्तु आध्यात्मिक विषेषज्ञों और अनेक तत्वज्ञों ने इधर भी दृष्टि दौड़ाई है, और कुछ न कुछ कहने का उद्योग किया है। वही रहस्यवाद है, रहस्यवाद की छाया ही छायावाद है। इस समय हिन्दी संसार में अगरेजी भाषा के साहचर्य से छायावाद की कविता का अधिक प्रचार है, और इस प्रणाली की ओर सुकविगण अधिक आकर्षित है। किन्तु खेद की बात यह है, कि इस पथ के पथिक अनेक अनधिकारी भी हो रहे हैं, जो व्यर्थ अपनी

कविताओं को जटिल बनाकर छायवाद को कलंकित कर रहे हैं। उन लोगों का विचार यह है कि कविता जितनी जटिल होगी, वह उतनी ही रहस्यात्मिका समझी जायगी; परन्तु यह उन लोगों का भ्रम मात्र है, जिसका परिणाम अच्छा नहीं हो रहा है। निराशावाद की सृष्टि इसी ने की है। किन्तु श्रीमती तारा पाण्डेय की कविता इन दोषों से रहित हैं उनकी कविता में निराशावाद की झलक अवश्य है। पर उसमे कवि कर्म और मर्म स्पर्श है, विषय का सहृदयता से चित्रण है। जटिलता दिखालाई नहीं पड़ती, प्रसाद गुण ही सर्वत्र लक्षित होता है।"

तारा देवी पाण्डेय दार्शनिक कवियित्री हैं। उनकी वेदना-भावना उच्चकोटि की है। उनकी समस्त रचनाओं मे उनकी असीमित वेदना है। उनकी वेदना में, उनकी पाड़ा में रहस्य की एक ज्योति है, जो हृदय को आलोकित करती है, प्राणों मे प्रकाश का संचार करती है। उनकी वेदना-अभिव्यक्ति वडी सुन्दर है। बड़ी स्वाभाविक है। स्वाभाविकता के साथ ऐसी सुन्दर अभिव्यक्ति अन्यत्र बहुत कम देखने को मिलती है। वेदना की ऐसी सुन्दर अभिव्यक्ति के लिये तारा देवी की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। निम्नांकित पंक्तियो में उनकी अभिव्यक्ति देखिये:—

'रोकर खोया मैंने बचपन,
आँसू सा पाया है यौवन,

व्यथित हो गया मेरा जीवन,
　　　पीड़ा है अपनी ।"

इस 'पीड़ा है अपनी मे' कवियित्री की कितनी स्वाभाविकता है। इसे कह कर कवियित्री ने आगे और कुछ कहने के लिये छोड़ा ही नहीं है। यहाँ श्रीमती तारा पाण्डेय का वास्तविक कवि हृदय है। सीधी-सादी पक्तियों मे उन्होंने हृदय की जिस असीमित वेदना को बन्द किया है, उससे उनका कवि कर्म बहुत ही सफल हो उठा है। पाठक आश्चर्य करेंगे, कि कवियित्री पीड़ा को क्यों इतना प्यार करती है? क्यों वह कहती है, कि पीडा उसकी अपनी है। हम यह लिख चुके हैं, कि तारा देवी दर्शनिक कवि हैं। उनकी पीड़ा में एक तथ्य है, एक रहस्य की ज्योति है। कवियित्री अपनी पीड़ा के उस रहस्य को स्वयं प्रगट करती हुई कह रही है:—

मैंने दुख अपनाया!
किन्तु क्यों? सुनिये–
झरे कुसुम देखे उपवन मे,
अन्त यही सब का जीवन में,
त्याग एक निःश्वास हृदय से,
मैंने दुख अपनाया।
अगणित दीप जलें अम्बर में,
अग्नि दहकती सागर-उर में,
जलता दीपक में पतंग भी,

मुझको जलना भाया !"
आत्मा के चिर-धन को भूली,
जग के सुख-दुख में ही भूली,
पानी भर आया आँखों में,
दुख से मन भर आया।

पाठक, अब समझ लें, कि कवियित्री पीड़ा को क्यों इतना महत्त्व देती है, और वह क्यों संसार में वेदना के गीत गाती है। जगत की नश्वरता ने कवियित्री के हृदय को समाकुल बना दिया है। कवियित्री जब जगत के वास्तविक जीवन पर विचार करती है, तब उसका हृदय पीड़ा से मथ उठता है, और वह फिर जगत में पीड़ा को छोड़ कर और कुछ नहीं पाती। उसकी दार्शनिक दृष्टि इतनी प्रबल हो गई है, कि वह संसार और जीवन की उन अवस्थाओं मे भी, जिनके सम्बन्ध मे लोगों का यह दृढ़ कथन है, कि वहाँ उल्लास है, वैभव है, उन्माद है, दुख और विषाद का दर्शन करती है। उसकी दार्शनिक आँखों को जगत मे दुख और विषाद के अतिरिक्त कुछ दिखलाई ही नहीं देता। इसीलिये वह दुख से अपने जीवन का शृंगार करने के लिये उत्कंठित भी हो जाती है। देखिये:—

"मैं दुख से शृंगार करूँगी।
जीवन मे जो थोड़ा सुख है,
मृग-जल है, उसमें भी दुख है,

छली हुई बहु बार जगत मे,
फिर क्यों अपनी हार करूँगी ?
मैं दुख से शृंगार करूँगी ?"

\+ + +

मैंने प्राणों में दुख पाला,
नशा करेगा क्या मधु-प्याला ?
प्रति पल जीवन में हँस हँस मैं,
मृत्यु सग अभिसार करूँगी।
मै दुख से शृंगार करूंगी।

कितनी उच्चकोटि की पंक्तियाँ हैं और इनमे कवि की मौलिकता का कितना अच्छा प्रस्फुटन हुआ है। ऐसी मौलिक पंक्तियाँ हिन्दी-साहित्य मे बहुत कम देखने को मिलती है। यदि मिलती भी हैं तो उनमे अनुभूति का अभाव रहता है।

यहाँ हमने तारा देवी की कुछ ही पंक्तियाँ उद्धृत की हैं, किन्तु मुझे ऐसा आभास हो रहा है कि वेदना-भावना को व्यक्त करने वाली इससे भी उत्कृष्ट पंक्तियाँ तारा देवी की रचनाओ मे विद्यमान हैं। सच तो यह है, कि ज्यां ज्यों मैं उनके 'शुक-पिक' और उनकी 'वेणुकी' को पढ़ रहा हूं, त्यों त्यों मेरे लिये यह प्रश्न अधिक जटिल होता जा रहा है, कि मैं किसे सुन्दर कहूं, और किसे असुन्दर। उनकी 'वेणुकी' की रचनाओं को पढ कर मैं तो इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि तारा देवी पाण्डेय हिन्दी-साहित्य की सर्वश्रेष्ठ कवियित्री हैं। यह एक साहित्यिक पाठक की सच्ची राय है, जो इस समय कवियित्रियों की कविताओं का

अध्ययन कर रहा है। हिन्दी-साहित्य को तारा देवी पाण्डेय की रचनाओं पर गर्व होना चाहिये। तारा देवी की रचनायें गूढ़ कल्पनाओं के जाल मे न फँस कर भावों के साथ हृदय मे पैठती हैं, और हृदय को अपने में मिला लेती है। उनकी सभी रचनायें उच्च कोटि की हैं, और सभी में उच्च कोटि की भावना हैं। हृदय-स्पर्शिता का गुण तो इनकी कविताओं में इतना अधिक है, कि वे हिन्दी की प्रमुख से प्रमुख कवियित्री को भी इस दृष्टि से बहुत पीछे छोड़ गई हैं।

श्रीमती तारा पाण्डेय नैनीताल की निवासिनी हैं। जब आप दो तीन वर्ष की थीं, तभी आप की माता का देहावसान हो गया। इस रूप में आपके कवि हृदय को प्रारंभ ही से संसार की नश्वरता का परिचय प्राप्त हुआ। आप एक सुशिक्षित, उदार-हृदय और महत्वाकांक्षिणी महिला हैं। नैनीताल के सुयोग्य और विद्वान डाक्टर श्रीयुत पुरुषोत्तम एम० बी० बी० यस जी आप के पति हैं। आप की रचनाओं के अब तक तीन संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं—सीकर, शुक पिक और वेणुकी।

निम्नांकित कविताओं में आप के काव्य-चमत्कार को देखिये:—

[१]

मैं दुख से शृङ्गार करूँगी।
जीवन में जो थोड़ा सुख है,
मृग-जल है; उसमें भी दुख है,

छली गई बहु बार जगत मे,
फिर क्यों अपनी हार करूंगी?
मैं दुख से शृङ्गार करूंगी!

दुखियों के आँसू ले-लेकर,
अपने गीले आँचल मे धर,
जग कर निशि मे, उन्हे गूथ मैं,
तारों से व्यापार करूंगी!
मैं दुख से शृङ्गार करूँगी!

मै ने प्राणों में दुख पाला,
नशा करेगा क्या मधु प्याला?
प्रति पल जीवन में हँस हँस मैं;
मृत्यु संग अभिसार करूंगी!
मैं दुख से शृङ्गार करूंगी!

सुख-दुख दोनों ही आवेंगे,
क्रम-क्रम से छवि दिखलावेंगे,
इस भिक्षुक जग को सुख देकर,
दुख के सुख को प्यार करूंगी!
मै दुख से शृंगार करूंगी!

[२]

सजनि सुन, मेरी कहानी!
भर चँगेरी फूल चुन-चुन,
गीत गाये मधुर गुन-गुन,

मुग्ध मेरा सरल बचपन,
अमर वैभव को कहानी !
छोड़ शय्या मुँह अंधेरे,
बाग मे जाती सवेरे,
कुसुम लाती थी घनेरे,
बालपन की यह कहानी !
वही मेरी पाठशाला,
मैं बनाती सुमन-माला,
गान गाती मधुप-बाला,
पा गई शिक्षा अजानी !
सजनि, यह छोटी कहानी !

[२]

मैं जलती हूँ सखि, मुझको जलना ही केवल भाता !
दीप पतंग जले दोनों नित,
किन्तु भिन्न हैं दोनों के चित,
दीपक हँसता है, पतंग को रोना केवल आता !
सुनती हूँ यौवन है मधुवन,
मुझको कहते होती उलझन,
मैं ने तो उन मधु दिवसों मे पाया दुख का नाता !
जीवन में है पल-पल जलना,
आँखों के पथ गल-गल बहना;
नहीं जानती चुपके से आ कौन मुझे समझाता !

छली गई बहु बार जगत मे,
फिर क्यों अपनी हार करूंगी?
मैं दुख से शृङ्गार करूंगी!

दुखियों के आँसू ले-लेकर,
अपने गीले आँचल में धर,
जग कर निशि मे, उन्हे गूथ मैं,
तारों से व्यापार करूंगी!
मैं दुख से शृङ्गार करूँगी!

मै ने प्राणों में दुख पाला,
नशा करेगा क्या मधु। प्याला?
प्रति पल जीवन में हँस हँस मैं;
मृत्यु संग अभिसार करूंगी!
मैं दुख से शृङ्गार करूंगी!

सुख-दुख दोनों ही आवेंगे,
क्रम-क्रम से छवि दिखलावेंगे,
इस भिक्षुक जग को सुख देकर,
दुख के सुख को प्यार करूंगी!
मै दुख से शृंगार करूंगी!

[२]

सजनि सुन, मेरी कहानी!
भर चँगेरी फूल चुन-चुन,
गीत गाये मधुर गुन-गुन,

मुग्ध मेरा सरल बचपन,
अमर वैभव को कहानी !
छोड़ शय्या मुँह अंधेरे,
बाग में जाती सवेरे,
कुसुम लाती थी घनेरे,
बालपन की यह कहानी !
वही मेरी पाठशाला,
मैं बनाती सुमन-माला,
गान गाती मधुप-बाला,
पा गई शिक्षा अजानी !
सजनि, यह छोटी कहानी !

[३]

मै जलती हूँ सखि, मुझको जलना ही केवल भाता !
दीप पतंग जलें दोनों नित,
किन्तु भिन्न हैं दोनों के चित,
दीपक हँसता है, पतंग को रोना केवल आता !
सुनती हूँ यौवन है मधुवन,
मुझको कहते होती उलझन,
मैं ने तो उन मधु दिवसों में पाया दुख का नाता !
जीवन में है पल-पल जलना,
आँखों के पथ गल-गल बहना;
नहीं जानती चुपके से आ कौन मुझे समझाता !

[४]

मेरे गीतों में भरी, देव !

पागल-पिक के उर की पुकार !

बन गई चाँदनी अंग राग,

भर रही माँग में नव-पराग,

मेरी आँखों से झरते हैं, प्रिय,

अश्रु नहीं ये हर सिंगार !

केशर से रंजित कर दुकूल,

हंसती हूं खिलते सुभग फूल,

मेरी साँसों मे बहती है,

मधु-ऋतु की मृदु सुरभित बयार !

दो देहों के हम एक प्राण,

गावें जीवन के मधुर गान,

मेरे सूने उर से मिलकर,

मेरे बन जाओ हे उदार !

[५]

वर नहीं देते मुझे प्रभु !

शाप भी लूंगी नहीं मैं !

जीतना जाना नहीं तो हार क्यों अपनी करूं मैं ?

जब मुझे रहना यहीं; क्यों समय से पहले मरूं मैं ?

पुण्य यदि दोगे नहीं तो पाप भी लूंगी नहीं मैं !

वर नहीं देते मुझे प्रभु ! शाप भी लूंगी नहीं मैं !

जन्म तुमने दे दिया अब जन्म के सुख-दुख सहूंगी,
सफल या असफल रहूँ पर मैं न तुमसे कुछ कहूँगी !
तुम न कुछ दोगे मुझे तो आप ही लूंगी नहीं मैं !
वर नहीं देते मुझे प्रभु ! आप भी लूंगी नहीं मैं !

[६]

यह जग हाय ! न अपना !
खोज चुकी मैं कोना-कोना,
मिला मुझे तो केवल रोना,
आज हुआ विश्वास पूर्ण यह,
जो कुछ है सब सपना !
अब मिथ्या अभिलाष करूं क्यों ?
औरों से कुछ आश करूं क्यों ?
बार बार छलते हैं मुझको,
बीती का क्या कहना !
बहुत दिनों से धोखा खाया,
आज सत्य यह सम्मुख आया,
अमर हुई वेदना हृदय की,
मुझे सुहाया हंसना !
यह जग हाय ! न अपना !

[७]

कैसा सुख ? कैसी मधु-बेला ?
मैंने तो अपने प्राणों में,

देखा दुख का मेला।

बरसा करता सुख बचपन में,
ज्यों बरसा होती सावन में,
कहते हैं सब, पर मैं ने तो,
आंसू से ही खेला!

आता सुन्दर मधु मय यौवन,
नव-नव आशाओं का उपवन,
तब भी रहा हृदय यह मेरा,
विस्मृत और अकेला!
कैसा सुख, कैसी मधु बेला!

[८]

बन गई हुं मै अमर अब,
मृत्यु मेरा क्या करगी ?

यह नहीं अभिमान मेरा,
है हृदय का सत्य सुन्दर,
शान्ति से स्वागत करूं,
वह अंक में मुझको भरेगी!

अमर हैं ये अश्रु मेरे,
बन गगन के दीप सुख कर,
मैं जिऊंगी और
मेरे प्राण की आशा जियेगी!

मधुर-मधु से सुन पड़ेंगे,

गीत मेरे सकल दिशि में,
जीत लूंगी मृत्यु को भी,
मुग्ध होकर वह सुनेगी !

[९]

मैं अमर हूं, विश्व मे होंगे अमर ये गीत मेरे !
आँसुओं से होड़ करते,
चपल ये तारे गगन के,
हारते आँसू नहीं, चिर-जन्म के हैं मीत मेरे !
जगत कहता, क्यों व्यथित हो ?
हास में यह रुदन कैसा ?
हसूँ कैसे ? मधुर दिन तो सब चले हैं बीत मेरे !
स्वप्न से भरता नहीं अब,
हाय ! मेरा जीर्ण अंचल,
रुक्ष इस जग के सदृश होंगे, सदा ये गीत मेरे !
मै नहीं हँसती जगत मे,
देखती हूँ हास शिशु का,
इस मधुरिमा को लिये जीवित रहेंगे गीत मेरे !
मै मधुर हूं, विश्व में होंगे मधुर ये गीत मेरे !

रामेश्वरी देवी मिश्र 'चकोरी'

हिन्दी काव्य-साहित्य के नव निर्माण में हमारे देश की महिलाओं ने अधिक भाग लिया है। महिलायें अपनी स्वाभाविक सरलता, और कोमलता के द्वारा, जो कि काव्य की सफलता के साधन हैं, जिस प्रकार हिन्दी काव्य-जगत में विश्व-भावना की सृष्टि कर रही है, वह अत्यन्त प्रशंसनीय और सम्माननीय है। इन्हीं नव निर्माण कर्त्रियों में 'चकोरी जी भी थीं, 'चकोरी' जी के लिये यहाँ 'थीं' लिखते हुये हृदय शोक के भार से दबा जा रहा है। चकोरी हिन्दी-साहित्य की एक ज्योति मान किरण थीं। उस किरण का प्रकाश अभी बिखरने भी न पाया था, कि क्रूर काल ने उसे सदा के लिये अंधकार के गर्भ में छिपा लिया। फिर भी अपने थोड़े से जीवन मे 'चकोरी, जी जो कुछ लिख गई हैं, उससे हिन्दी-साहित्य को अच्छा 'प्रकाश, ही मिलता है।

'चकोरी' जी ने वास्तव में कवि हृदय पाया था। उनका कवि हृदय बहुत ही सुकुमार और विशाल है। उन्होंने अपने

श्री मती रामेश्वरी देवी 'चकोरी'

सुकुमार और विशाल हृदय मे जो कुछ अनुभव किया है, उसी को अपनी कल्पनाओ मे ढाला है! उनकी अनुभूति में तथ्य है, सजीवता है, मार्मिकता है। उन्होंने अपने अनुभूत भावों का जिस सरलता, जिस स्वाभाविकता, और जिस सुन्दरता के साथ चित्रण किया है, वह प्रशंसनीय है, सराहनीय है। उनके चित्रण मे कला का प्रस्फुटन है, रस का प्रवाह है। कला और रस ने मिल कर रचनाओं को अधिक मधुर बना दिया है। इतना मधुर बना दिया है, कि हृदय स्वय मधुर बन जाता है।

'चकोरी' जी की रचनाओं मे प्रणय-जन्य विषाद है, वेदना है, और उसमे है उनके हृदय की सच्ची अनुभूति। उस वेदना और उस विषाद में उनके हृदय का उल्लास भी छिपा हुआ है। कहना चाहिये, कि आपने हर्ष और विषाद को एक ही स्थान पर बड़ी ही उत्तमता के साथ लाकर बिठाल दिया है। 'चकोरी' जी दो विभिन्न अवस्थाओ मे साम्यता उत्पन्न कर देना भली भाँति जानती हैं। हर्ष के साथ ही साथ विषाद का जितना सुन्दर चित्रण आपकी रचनाओ मे पाया जाता है, उतना अन्यत्र बहुत कम देखने को मिलता है। विशेषता तो यह है, कि दोनों में माधुर्य है, दोनों मे मिठास है। विषाद भी उतना ही मधुर और उतना ही मीठा ज्ञात होता है, जितना हर्ष! 'चकोरी' जी अपनी इस कला के लिये हिन्दी-साहित्य में अधिक प्रशंसनीय हैं।

'चकोरी जी' की अनुभूति बहुत ही निकट की अनुभूति

है। उन्होंने जिसका चित्रण किया है, उसको बहुत ही निकट से देखा है। यही कारण है, कि उनकी रचनाओं मे हृदय ग्राहिता है, मर्म स्पर्शिता है। उदाहरण के लिये निम्नांकित पक्तियाँ देखिये :—

कुछ कहो, कहाॅ से आये हो,
मतवाली व्यापकता लेकर !
मरकत के प्याले में भर दी,
किसकी मादकता लेकर !
शैशव के सुन्दर आंगन म,
तुम चुपके से आ गये कहाॅ ?
भोले भाले चंचल मन में,
लज्जा-रस बरसा गये कहाँ ?

शैशव के आँगन में चुपचाप आने वाले यौवन का यह कितना सरल और स्वाभाविक चित्रण है। जिस प्रकार यौवन शैशव के पश्चात् जीवन मे प्रवेश करके जीवन को उन्माद और उल्लास मय बना देता है, उसी प्रकार कवियित्री की उक्त पंक्तियों में भी मन को विस्मृत कर देने की शक्ति है। शक्ति इसलिये है, कि उसमें कवियित्री के हृदय की सच्ची अनुभूति है। यौवन के 'चुपके से' आगमन पर भी कवियित्री ने उसे भली प्रकार देख लिया है। कवियित्री के कहने का ढंग बहुत ही सीधा सादा और सरल है, किन्तु उसमें एक चमत्कार है, एक आकर्षण है। उसका हृदय और प्राणों पर बहुत ही मधुर

प्रभाव पड़ता है। देखिये कवियित्री इसके आगे और कहती है:-

नन्हे मन ने किस भाँति अचानक
आज प्रणय को पहचाना।
अभ्यन्तर में क्यों सुनती हूं,
पीड़ा का व्यथा-सिक्त गाना।

चकोरी जी ने यहाँ शैशव और यौवन का एक साथ ही बड़ा सुन्दर चित्रण किया है। ऐसा ज्ञात होता है, मानो चकोरी जी की उक्त पंक्तियों में शैशव और यौवन, दोनों ही अपने अपने वैभव के साथ विराजमान हैं।

यौवन के आगमन पर चकोरी जी शान्त नहीं हो जातीं। वे पुनः हृदय को टटोलती हैं, और उसमें चारों ओर एक आकांक्षा, एक उल्लसित भावना, और उसके साथ ही साथ किसी के न होने का 'अभाव' पाती हैं। नारी जीवन का यह एक गभीर और अनुभव-युक्त अध्ययन है। 'चकोरी जी' के नारी हृदय ने समस्त विश्व के नारी हृदय का अध्ययन किया है, और अपने उस विशाल और तथ्य-पूर्ण अध्ययन को निम्नांकित पंक्तियों मे बाँध कर रख दिया है:—

उर अन्तर किसके मिलने को,
अज्ञात भावनायें भर कर,
उन्मत्त सिन्धु सा उबल पड़ा,
अपना लेने किस को बढ़ कर !

'अभाव' पूर्ण हो जाने पर फिर स्थिति बदल जाती है।

जब 'अभाव' 'पूर्ण' के रूप में सामने आ जाता है, तब वहाँ दिखाई देता है, आकर्षण, उन्माद। अंग-अंग में एक दूसरे को खींचने और एक दूसरे से मिलने की भावना। ऐसी भावना जिसमें अतृप्ति रहती है, और जो सदैव प्यास का अनुभव करती है। कवियित्री को यह आकर्षण बड़ा ही रहस्यमय ज्ञात होता है। वह स्वयं अपने हृदय में उस आकर्षण का अनुभव करती है, और जिज्ञासु के रूप में कह उठती है:—

क्या है यह आकर्षण,
　　　　कैसा है इसका इतिहास?
आँखों के मिलते ही बढ़ती,
　　　　क्यों आँखों की प्यास?

अधर खोजते रहते अस्फुट,
　　　　अधरों की मुसुकान,
यौवन हाथ पसार माँगता,
　　　　क्यों यौवन का दान?

यही जिज्ञासा इसके पश्चात कवियित्री को दार्शनिक बना देती है। कवियित्री जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में विचरण करती हुई एक सत्य लोक में पहुँचती है। उसे इस आकर्षण में, इस प्रेम मे, एक वासना दिखाई देती है। वह अपनी अनुभव-शक्ति से यह समझने लगती है कि यह जीवन के लिये विष है, और उसका हृदय तिल मिला कर कह उठता है:—

इस यौवन के उषा काल में छिपी साँझ की बेला।

\+ + +

स्वप्नों ने है हाय पिलाया मुझको विष का प्याला।

\+ + +

अब न देखना पगली इस नश्वर यौवन का रंग।

इस प्रकार चकोरी जी की रचनाओं मे जीवन की विभिन्न अवस्थाओं से उत्पन्न हुये प्रेम, विषाद, और उसके पश्चात् दार्शनिक भावों का अच्छा प्रस्फुटन हुआ है। ऐसा ज्ञात होता है, मानों चकोरी जी प्रेम और विषाद की शक्ति से अपनी कविताओं का एक नवीन संसार बसाने जा रही थीं, जो कदाचित् साहित्य-जगत में अमर होता। किन्तु नियति को यह स्वीकार न था, और वे अपने उस अनोखे संसार को भली प्रकार बसा न सकीं; किन्तु फिर भी उसकी नींव हमारी आँखों के सामने उसकी एक झलक ला देती है, और जिसे हम देख कर आश्चर्य-चकित हो उठते हैं।

चकोरी जी का कवि जीवन बहुत ही सरल और चमत्कार-पूर्ण है। उन्होने स्वयं अपने कवि जीवन का परिचय इस प्रकार दिया है:—

नाम से हूं विदित 'चकोरी' कवि मण्डली में,
किन्तु न कलंकी निशा नाथ से छली हूं मैं।
भावुक जनों के मंजु मानस-सरोवर में,
पंकज पराग हेतु भ्रमित अली हूं मैं।

विमल विभूति हूँ रसों मे चारु कल्पना की,
काव्य-कुसुमों मे एक नवल कली हूं मैं।
भक्ति देवि शारदा की, शक्ति दीन-दलितों की,
'अरुण' सनेही के सनेह मे पली हूं मै ॥

'अरुण' जी चकोरी जी के पति हैं। फिर उनका यह कहना स्वाभाविक ही और चमत्कार-पूर्ण था, कि 'अरुण' 'सनेही के सनेह में पली हूँ मै'। नहीं तो, 'चकोरी' भला 'अरुण' को स्नेह की दृष्टि से कहाँ देखती है ? किन्तु नहीं, चकोरी जी, मे यही तो वैचित्र्य है। उन्होंने आगे चल कर अपने सम्बन्ध में कुछ और सुन्दर पंक्तियाँ लिखी हैं, जो इस प्रकार हैं:—

खेला करती थी बगिया मे फूलों और तितलियों से।
बातें करती रहती थी अक्सर उन अस्फुट कलियों से।
कितना परिचय था घनिष्ठ नरही की प्यारी गलियों से।

+ + +

किन्तु लगा चस्का पढ़ने का कुछ दिन बाद मुझे प्यारा।
मिलीं साथिने नयी-नयी वह नूतन जीवन था प्यारा।
मेरे लिये विनोद-भवन, महिला-विद्यालय था सारा ॥

+ + +

महिला-विद्यालय को छोड़ा, नरही की गलियाँ छोड़ीं।
बगिया-सी विभूति छोड़ी, हँसती प्यारी कलियाँ छोड़ीं।
साथ खेलने वाली वे बचपन की प्रिय सखियाँ छोड़ीं॥

+ + +

वे अतीत की स्मृतियाँ आकर हाहाकार मचाती हैं।
अन्तरतम में एक मधुर-सी, पीड़ा ये उपजाती हैं॥

श्रीमती चकोरी जी का जन्म १९१६ ई० में उन्नाव ज़िलान्तर्गत बेन्थर ग्राम में हुआ था। आपके पिता का नाम पं० उमाचरण जी शुक्ल था। आप तहसीलदार थे। ढ़ाई वर्ष की अवस्था मे ही आपके पिता का देहावसान हो गया, और आप अपने ननिहाल लखनऊ में नरही नामक मुहल्ले में आकर रहने लगीं। सन् १९२९ मे आपका विवाह लखनऊ-निवासी पं० लक्ष्मीशंकर 'अरुण' के साथ हुआ। 'अरुण' जी के सहयोग को पाकर आप की कविता का अधिक विकास हुआ। किन्तु दुःख है, कि आपकी कविता का पूर्ण रूप से विकास न हो पाया, और आप सन १९३५ के सितम्बर महीने मे स्वर्ग सिधार गई। बल्कि यों कहना चाहिये, कि आपके रूप में हिन्दी-साहित्य की एक अमूल्य निधि लुट गई।

निम्नांकित कविताओं मे आपकी सुन्दर, सरस और स्वाभाविक काव्य-कल्पना को देखिये:—

[१]

एक घूँट

भव सागर के तट पर अजान,
सुनती हूँ वह कल रव महान।
एकाकी हूं कोई न संग,
उठती है रह-रह भय-तरंग।

केवल यौवन का भार लिये,
बैठी हूं सूना प्यार लिये।
करते बादल हैं अश्रुदान, घन का सुनती गर्जन महान।
आती है तड़ित चिराग लिये, बिछुड़ी स्मृति का अनुराग लिये।
बुझ जाता है वह भी प्रकाश,
होता है भीषण अट्टहास।
मारुत का वेग प्रचण्ड हुआ,
वह उदधि-हृदय भी खण्ड हुआ।
ओढ़े काले रँग का दुकूल,
है अन्त-हीन-सा सिन्धु-कूल।
उत्ताल तरंगें बढ़ आईं छूने को मेरी परछाईं,
उन संभ्रम शिथिल झंकोरों को ममता-सी मृदुल हिलोरों को,
लेकर सब शून्य उमंगों को,
पकड़ा उन तरल तरंगो को,
वह चली त्याग पीड़ा-विषाद,
होगई विसुध, मिट गई साध।
सहसा कानो में उषा-गान,
झनझना उठा छू शिथिल प्राण।
सागर की धड़कन शान्त हुई, वह स्वप्न-नाटिका भ्रान्त हुई।
खिलखिला उठा जग एक बार, आ पहुँचा मेरा कर्णधार।
यौवन कलिका थी जाग उठी,
लहरों की शय्या त्याग उठी।

अर्पण कर प्रेम-पराग मुझे,
नाविक ने दिया सुहाग मुझे।
नाविक की वह पतवार-हीन,
नौका थी जर्जर अति मलीन।
द्रुत गति से नौका बहती थी, कुछ मौन स्वरों में कहती थी!
इस बार तरंगें मचल पड़ीं, तरणी के पथ में अचल खड़ी!
मैं काँप उठी, उद्भ्रान्त हुई,
जर्जर नौका भी श्रान्त हुई!
रक्षक भी मेरा था अधीर,
दृग कोरों से वह चला नीर!
सहसा तरणी जल-मग्न हुई!
छाया-सी क्षण में भग्न हुई!
प्राची में अरुण मुसुकराया, लहरों ने प्रलय गान गाया!
मेरा नाविक बह गया कहीं, जीवन सूना रह गया वहीं!
फिर बिखरा दी संचित उमंग,
ले गई उसे भी जल-तरंग।
मैंने हो पथ-दर्शक विहीन,
कर दिया सिन्धु में आत्म लीन!
कितना अथाह! कितना अपार!
ले चली मुझे भी एक धार!
छूटें भव-बन्धन. चाह नहीं, हो जाय प्रलय, परवाह नहीं!
जाती हूँ अब उस पार वहाँ, है मेरा प्राणाधार जहाँ!

[२]

यौवन से

कुछ कहो, कहाँ से आये हो—
मतवाली व्यापकता लेकर,
मरकत के प्याले में भर दी—
यह किसकी मादकता लेकर !

शैशव के सुन्दर आँगन में,
तुम चुपके से आ गये कहाँ !
भोले भाले चंचल मन में,
लज्जा-रस बरसा गये कहाँ !

ले गये चुरा किस हेतु कहो,
वह जीवन शान्त तपस्वी का,
निष्कपट अलौकिक निर्विकार,
वह जीवन धीर मनस्वी का।

उस छोटे-से नन्दन-वन में,
जिसमें न पुष्प थे, कलियाँ थीं,
थे भाव नहीं, आसक्ति नहीं,
केवल प्रमोद रँग-रलियाँ थीं।

संकुचित कली की पंखुरियाँ,
छू चुपके से विकसा दीं क्यों ?
सौरभ की सोई-सी अलकें,
आसक्त ! कहो, उकसा दीं क्यों ?

उस शान्त स्निग्ध नीरवता मे,
प्रलयंकर झंझावात मचा,
यह कैसा काया-कल्प किया,
यह कैसा माया-जाल रचा !

लज्जा का अंजन लगा दिया,
उन चपल हठीली आँखों में,
ले गये लूट स्वातंत्र्य-सौख्य,
हे हठी लुटेरे लाखों में।

नन्हे मन ने किस भाँति अचानक,
आज प्रणय को पहचाना !
अभ्यन्तर में क्यों सुनती हूं,—
पीड़ा का व्यथा सिक्त गाना।

उर-अन्तर किसके मिलन हेतु,
अज्ञात भावनायें उठ कर;
उन्मत्त सिन्धु सा उबल पड़ा,—
अपना लेने किसको बढ कर !

उस सरल हृदय मे यह कैसा,
अभिलाषाओं का द्वन्द हुआ;
उत्थान हुआ या पतन हुआ,
दुख हुआ या कि आनन्द हुआ।

अँग-अंग मूक संभाषण की,
यह कैसी जटिल पहेली है,

बतलाओ तुम्हीं, तुम्हारी ही,
उलझाई अखिल पहेली है।

[३]

वांछा

१

इन अरमानों की समाधि पर,
प्रिय! दो फूल चढ़ा दो;
इस दुखिया का आज एक,
क्षण को तुम मान बढ़ा दो।
स्नेह-शब्द भी नहीं सुना है, जिसने इस जीवन में।
उसको ही तुम आज प्रेम का सुन्दर पाठ पढ़ा दो॥
हाँ यह प्रेम-समाधि सुखों की केवल मौन कहानी,
जिसे देख कर हँस देती है, यह दुनिया दीवानी!

२

और आज फिर मिट जाने का,
खेल मुझे सिखला दो,
तुहिन-कणों से इस सूने,
जीवन को आज सजा दो!
उषा-काल की अरुण प्रभा से भर दो माँग सजीली!
सन्ध्या के शत-शत रंगो का शुभ परिधान उढ़ा दो।
मेरे प्राणों मे फिर हलका प्रेमासव ढुलकाना;
प्रिय! सोने देना अनन्त निद्रा में, फिर न जगाना!

[४]

व्यथित विहाग

कितने अटल युगों से सुनती आती हूँ यह बात—
दूर दूर है, अभी दूर है, मेरा स्वर्ण-प्रभात !
हाँ, वह स्वर्ण-प्रभात, छिपा, जिसमे वैभव का ज्ञान;
लुटा चुकी हूं जिसके स्वागत में अपना सम्मान !
अधिकारों की माँग, दासता का है भीषण पाप;
घात और प्रतिघात पतन के कहलाते अभि शाप।
अविचारी का प्यार बना है, मुझको अत्याचार;
खोज रही हूँ जिसमें इस जीवन का उपसंहार।
कठिन विवशता जब करती अन्तर में हाहाकार,
आकुल नयन लुटा देते हैं तब अपने उपहार।
अभी नहीं सूखे है मेरे उर के तीखे घाव,
जिनकी कसक जगाती रहती है विरोध के भाव !
मानवते ! कुछ ठहर. न उकसा छिपी हुई वह आग;
आज शहीदों के शव पर गाने दे व्यथित विहाग।

श्रीमती रत्नकुमारी देवी

हिन्दी-साहित्य की नवीन कवियित्रियों में रत्नकुमारी जी का प्रमुख स्थान है। रत्नकुमारी जी की एक-एक पंक्ति मे जीवन है, प्राणों को छूने की शक्ति है। सुन्दर और उचित शब्दों के द्वारा गुँथी हुई आपकी परिमार्जित भाषा, और विशद भाव हृदय को विमुग्ध कर लेते हैं। हिन्दी-साहित्य के उस अस्पष्ट-वाद से, जिसमें अनेक कवियित्रियाँ भी वह गई हैं, आप अपने को सुरक्षित रख सकी हैं। आपकी रचनाओं में आपका हृदय है, और है आपकी अनुभूति। आपने अपने अनुभूत भावों का चित्रण बड़ी ही सुन्दरता और बड़ी ही स्वाभाविकता के साथ किया है। आपकी काव्य-कल्पनाओं मे एक सत्य है, एक कल्याण है। इसीलिये आपकी रचनाओं में कला का प्रस्फुटन भी अधिक हुआ है, और इसीलिये आपकी रचनायें प्राणों को स्पर्श भी करती हैं।

आप एक धनाढ्य पिता की सन्तान हैं। उस पिता की सन्तान है, जिसने राष्ट्र की सेवा के लिये अपना सर्वस्व अर्पण

श्रीमती रत्नकुमारी देवी

कर दिया है। पिता के हृदय में राष्ट्र के प्रति जो अगाध भक्ति-भ बना है, आपका कवि-हृदय उससे कैसे अपने को दूर रख सकता है। पीड़ित राष्ट्र की पुकार मे जो 'सत्य' छिपा रहता है, वास्तविक कवि निरन्तर उसका आह्वान करता है। कवि के हृदय को स्वभावतः वह अधिक प्यारा लगता है। उसके सामने भले ही राष्ट्र और समाज का प्रश्न न हो, किन्तु पीड़ित मनुष्यों का प्रश्न अवश्य रहता है। वास्तविक कवि पीड़ित मनुष्यों की उस करुण संगीत की, जिसमें उनकी आत्मा का विह्वल राग ध्वनित होता रहता है, कभी उपेक्षा नहीं कर सकता। उपेक्षा करने को कौन कहे, वह तो उसे अपने हृदय और प्राणों से सुनता है, और एक-एक रव को अपने हृदय का रव समझ कर अपनी कविता में व्यक्त करता है।

श्रीमती रत्नकुमारी देवी ने भी यही किया है। उन्होंने अपनी पीड़ित राष्ट्र-माता की पुकार हृदय और प्राणों से सुनी है। उन्होंने उन पीड़ितों को अपने हृदय की आँखों से देखा है, जो रोटी और कपड़े के अभाव में दिन रात झुलसे जा रहे हैं। उनकी उस अभावावस्था को देख कर उनका हृदय तड़प उठा है; और वे उनकी दुरवस्था को दूर करने के उपाय ढूँढ़ने लगती हैं। किन्तु कोई उचित मार्ग नहीं मिलता। अतः विवश होकर किसी 'तेज राशि' को पुकार उठती हैं। देखिये:—

छिपी हुई ओ तेज-राशि,—
आ ! अन्तर आलोकित कर दे।

दुर्बलता के सघन तिमिर में,

ज्योतिर्मयी आभा भर दे।

अपना भूला मार्ग खोज लूँ,

जिधर छिपी रत्नों की खान।

उनमें से दो-एक बीन लूँ,

आत्मिक बल, जाग्रति उत्थान।

माता के मुरझाये मुख पर,

या तो फिर देखूँ मुसुकान।

या फिर उसके शोक-हरण-हित,

हँस कर कर दूँ निज बलिदान॥

यह एक कवि की कोमल राष्ट्रीय-कल्पना है। इसमें कवि का हृदय है। उसके हृदय की विशालता है। वह अपनी पीड़ित माता के अधरों पर हँसी की ज्योति देखने के लिये अपने को भी मिटाने के लिये तैयार है। इसलिये नहीं, कि वह उसकी माता है, किन्तु इसलिये, कि वह पीड़ित है। उसकी पुकार में 'सत्य' है, सुन्दरता है। उसका हृदय उसी 'सत्य' पर रीझा हुआ है। रीझा हुआ है, इसलिये, कि उसका कवि कर्म जागृत हो उठा है। रत्न कुमारी जी का कवि-कर्म इसी प्रकार सर्वत्र जागृत दिखाई देता है। कविता के विभिन्न उपकरणों को उसने बड़े ही कौशल और बड़ी ही सुन्दरता के साथ ग्रहण किया है।

रत्न कुमारी जी की काव्य-कल्पनाओं का क्षेत्र असीम है। उनकी राष्ट्रीय-भावनाओं में भी एक प्रकार की असीमता पाई

जाती है। इसका कारण यह है, कि उनके हृदय में जो कवि है, वह वास्तव में कवि है। वह समाज और राष्ट्र से अधिक ऊपर उठ कर विश्व को भी देखता है। उस कवि मे दार्शनिकता है। उसने अपनी राष्ट्रीय-रचनाओं में जहाँ अपनी विशालता का परिचय दिया है। वहाँ उसके दार्शनिक कवि भी बड़े ही ऊँचे और महत्त्व-पूर्ण हैं। रत्न कुमारी जी के कवि का कोई एक विशेष क्षेत्र नहीं है, उसमें विशेषता यही है कि वह कविता के उपकरणों को देखकर सर्वत्र जागृत हो जाता है। रत्नकुमारी जी के कवि की सी जागृति बहुत कम लोगों में दिखाई देती है। देखिये, राष्ट्रीय-जगत की तरह दार्शनिक संसार में भी उनका कवि कर्म कैसा जागृत हो उठा है:—

आली! मत छेड़ो सुख तान।
मधुर सौख्य के विशद भवन मे,
छिपा हुआ अवसान! आ०!
निर्झर के स्वच्छन्द गान में,
छिपी अरे! वह साध,
जिसे व्यक्त करते ही उसको,
लग जाता अपराध,
इससे ही वह अविकल प्रतिपल,
गाता दुख के गान।
महा सिन्धु के तुमुल नाद में,
है भीषम उन्माद,

जिसकी लहरों के कम्पन मे,
है अतीत की याद।
तड़प-तड़प इससे रह जाते,
उसके कोमल प्रान!

कितनी सुन्दर पंक्तियाँ हैं, और इन पंक्तियों में कवियित्री के हृदय की कैसी अनुभूति विकसित हुई है। रत्न कुमारी जी की ये पंक्तियाँ किसी भी साहित्य की अमर पंक्तियों से टक्कर लेने की समता रखती हैं। इनमें मधुर कल्पना के साथ भावों की जैसी विशालता है। वैसी नवीन कवियित्रियों में बहुत कम देखने को मिलती है। इन पंक्तियों के आधार पर हम यह कहने का साहस कर सकते हैं, कि हिन्दी-साहित्य की प्रमुख कवियित्रियों में रत्न कुमारी जी का भी एक अपना स्थान है।

भावों की विशालता के साथ ही साथ रत्न कुमारी जी में कल्पना-वैचित्र्य भी है। उनकी कल्पनायें नितान्त नूतन और चमत्कार से परिपूर्ण हैं। कहीं-कहीं तो इनकी कल्पना इतनी विचित्र है, कि उसकी जोड़ की कल्पना हिन्दी-साहित्य भर में कहीं दिखाई नहीं पड़ती. और इसीलिये वह अधिक नूतन भी है। देखिये:—

कोकिल के गानों पर,
बन्धन के हैं पहरेदार,
कूक-कूक केवल बसन्त में,
रह जाती मन मार;

अपने गीत-कोष से जग को,
देती दुख का दान। आ०।

कोकिल की कूक के सम्बन्ध में कवियित्री ने कैसी नवीन कल्पना खोज कर निकाली है। कोकिल के कूकने और उसके मन मार कर रह जाने में कवि हृदय का एक सत्य है, उसकी वेदना का एक इतिहास है, जो मधुर है, हृदय-स्पर्शी है। कवियित्री ने अपनी इस नूतन कल्पना के द्वारा जिस वेदना की ओर संकेत किया है, वह उसके विशाल हृदय और व्यापकता की परिचायिका है।

रत्नकुमारी जी की काव्यप्रतिभा सर्वतोमुखी है। उनमें करुणा है, वेदना है, दार्शनिकता है, भावुकता है। उनकी सुलझी हुई भावुकता जिन भावों को लेकर उड़ती है, उन्हीं को ठीक-ठीक पाठकों के हृदय में व्यक्त भी करती है। साधारणतः भावुक कवि अस्पष्टवादी और निगूढ़ जगत का जीव होता है, किन्तु रत्नकुमारी जी की भावुकता इन दोषों से सर्वथा रहित है। इसका कारण यही हो सकता है, कि उनकी भावुकता में भी एक दार्शनिक 'सत्य' है, और उन्होंने उस दार्शनिक 'सत्य' का भली भाँति अनुभव कर लिया है। देखियेः-

लतिका के आनन पर क्यों ?
झलका अन्तर्दाह ?
तरु क्यों पत्र अधर कम्पन से,
भरते नीरव आह ?

सान्ध्य गगन की मलिनाकृति से,
क्यों प्रगटित अवसाद ?
श्यामल भूधर झींगुर रव मिष,
क्यों करते दुख-नाद ?

इसी प्रकार कवियित्री ने आगे चल कर एक स्थान पर और लिखा है:--

हृदय हीन होने पर भी है,
कितना यह सहृदय व्यापार।
प्रकृति सुन्दरी सत्य बता दे,
किससे पाया इतना प्यार।

वास्तव में बात तो यह है कि रत्नकुमारी जी का कवि स्वयं अधिक सहृदय है। इसीलिये उनकी कविताओं में सहृदयता का अधिक समावेश भी हो गया है। उन्हें प्रकृति का एक एक व्यापार अधिक सहृदय दिखाई देता है। मानों वे प्रकृति की सहृदयता को अपने गीतों मे भर कर मानव जगत के सम्मुख एक 'चिर सत्य' उपस्थित कर रही हैं। कवियित्री की इस महत्त्वाकांक्षा की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। कवियित्री ने विभिन्न प्रकार की काव्य-कल्पनाओं के द्वारा अपनी महत्त्वा-कांक्षा को कहीं कहीं इतनी सुन्दर, उत्कृष्ट और कला-पूर्ण पंक्तियों में बद्ध किया है, कि उन्हें देख कर यह कहना ही पड़ता है, कि कवियित्री धीरे-धीरे विश्व-साहित्य की ओर अग्रसर

हो रही है, और हिन्दी जगत मे विश्व भावना की सृष्टि करके उसे अधिक गौरवान्वित बना रही है।

श्रीमती रत्नकुमारी जी मध्यप्रान्त के सुप्रसिद्ध नेता, और हिन्दी के सफल नाटककार जबलपुर निवासी सेठ गोविन्ददास जी की सुयोग्य पुत्री हैं। सेठ जी स्वयं भी कवि और सुप्रसिद्ध नाटककार हैं। आपने अपने नाटकों की रचना करके हिन्दी के नाट्य साहित्य को अधिक गौरव प्रदान किया है। आपकी ही साहित्यिक संस्कृति का रत्नकुमारी जी के हृदय पर भी प्रभाव पड़ा हुआ है। रत्नकुमारी जी भी आप ही की भाँति श्रेष्ठ कवि-यित्री होने के साथ ही साथ कहानी-लेखिका और नाटककार हैं। कविता ही की भाँति आपकी कहानियाँ भी बड़ी उच्च कोटि की, और हृदय-स्पर्शी होती हैं। आप बड़ी सहृदय, भावुक, और विचारशीला हैं। आपने संस्कृत को 'काव्यतीर्थ' परीक्षा भी पास की है। संस्कृत के ज्ञान ने आपकी काव्य-प्रतिभा को अधिक बलवती बना दिया है। आपकी रचनायें सुललित, भाषा परि-मार्जित, और भाव गँठे हुये होते हैं। आपकी रचनाओं का 'अंकुर' नाम से एक संग्रह भी प्रकाशित हुआ है।

निम्नांकित कविताओं में रत्नकुमारी जी की काव्य-प्रतिभा देखिये:—

[१]

इतना प्यार

जब निदाघ से तापित होता,
उर्वी का उर अपरम्पार,

उमड़-घुमड़ कजरारे वारिद,
सिंचन करते शिशिर फुहार।

जब तम-पट मे मुँह ढँक राका;
रोती गिरा अश्रु-नीहार,
सुभग सुधाधर-उसे हँसाता,
कलित कलायें सभी प्रसार।

सरोजिनी का मृदुल वदन जब,
नत होता सह चिन्ता-भार,
दिन कर कर स्पर्श से उसमें,
करता अमित मोद संचार।

सरिताओं के जीवन पर जब,
करता तपन कठोर प्रहार,
व्योम-मार्ग से उदधि भेजता,
उन तक निज उर की रस-धार।

कठिन पवन के झोंकों से जब,
होता विकल मधुप सुकुमार,
कमल-कली झट कसे बचाती,
आवृत कर निज अन्तर्द्वार।

हृदय हीन होने पर भी है,
कितना यह सहृदय व्यापार,
प्रकृति सुन्दरी सत्य बतादे,
किससे पाया इतना प्यार!

[२]

नीरव आवास

यह मेरा नीरव आवास,
पर्वत-माला के अंचल में इसका सतत निवास !
स्नेह स्निग्ध श्यामल तरु वलियाँ,
फैला छाँह गँभीर,
विटप-करों के मृदु कम्पन से,
देती सुरभि समीर।
शैल-श्रेणि के उर से निकली,
प्रेम-पगी रस-धार,
इस पर अविरल सिंचन करती,
अपनी अमल फुहार।
वार-वार अम्बर मणि पर जब,
ऊषा प्रातःकाल,
बड़े-बड़े आभा मय मोती,
बिखराती भर थाल,
इसके आस-पास आकर वह,
अतुलित निधि भण्डार,
सुकुमारी दूर्वा के उर का,
व
अम्बर में आती जब स न्य
राग भरा सज साज,

उसके रँग में रँग ही जाता,
　　　　अविचल शैल-समाज।
जब रजनी का सस्मित मुख-शशि,
　　　　बिखराता आलोक,
हीरक-सी हिम-राशि सुन्दरी,
　　　　हँस उठती अवलोक!
जग की अविकल कल कल से जो,
　　　　मानस होते श्रान्त,
खग को निभृत नीड़ सी इसमें,
　　　　मिलती शान्ति नितान्त।
यहाँ न क्लान्ति श्रान्ति है कुछ भी केवल सतत विकास,
　　　　यह मेरा नीरव आवास!

[२]

जिज्ञासा

छल छल करिता सरिता में क्यों,
　　　　छल का करुण प्रवाह?
निर्झर क्यों झर झर बिखराता,
　　　　नयन नीर का वाह?
लतिका के नत आनन से क्यों,
　　　　झलका अन्तर्दाह?
तरु क्यों पत्र-अधर-कम्पन में,
　　　　भरते नीरव आह?

हृदय धूम ने तम में क्यों है,
आवृत अवनी अंग ?
व्यथा भार से होता क्यों यह,
पवन गमन में भंग ?
सान्ध्य गगन की मलिनाकृति से,
क्यों प्रकटित अवसाद ?
श्यामल भूधर भींगर रव मिष,
क्यों करते दुख नाद ?

[४]

मयूरी नर्तन

नभ के प्रदेश में जल धर,
फैलाते अपना आसन।
अधिकार जमा क्रम-क्रम से,
दृढ़ करते अपना शासन।
आच्छादित धीरे धीरे,
है हुआ गगन अब सारा।
लघुतम प्रदेश भी घन के,
जालों से रहा न न्यारा।
अपने अति प्रिय जलदों को,
ला अतुल समुन्नति धारी।
है मुग्ध मयूरी मानस,
ले हर्ष हिलोरें भारी।

अंगों में अन्तर्हित कर,
निज चपल चित्त चावों को।
यह दर्शाती नर्तन से,
अति अभिनन्दन भावों को।

भाग-प्राप्ति की उस समृद्धि में,
इस को चाह नहीं है।
केवल लख प्रिय-वैभव इसको
सुख की थाह नहीं है।

रामकुमारी देवी चौहान

हिन्दी की श्रेष्ठ और उदीयमान कविवियित्रियों मे रामकुमारी चौहान जी का एक विशेष स्थान हैं। आप की रचनायें प्राणों को स्पर्श करती हैं। उनमें वेदना है, अनुभूति है। कहीं-कहीं तो वेदना के साथ करुणा इतनी छलक पड़ी है, कि मन अपने आप उस पर लुट जाता है। वेदना के साथ करुणा का चित्र खींचना रामकुमारी जी की एक अपनी विशेषता है। आपकी वेदना विश्व के गीत गाती है, आपकी करुणा मानव हृदय को 'सत्य' का सन्देश देती है। उसमे दार्शनिकता के साथ ही साथ जीवन का तत्त्व भी है; और है उस ढङ्ग से, जिसे कविता की भाषा में कवि की स्वाभाविकता कहते हैं। शब्द शब्द मे, पंक्ति पंक्ति मे, स्वाभाविकता की छटा है। ऐसा ज्ञात होता है, मानों शब्दों और पंक्तियों मे, वास्तव मे, किसी का पीड़ित हृदय झन-झनाहट उत्पन्न कर रहा है ! देखिये :—

एक ही उच्छ्वास मे
उमड़े दुखों के भार कितने !

\+ \+ \+

अश्रु कण में खेलते शिशु-
प्रेम के सुकुमार कितने !

कितनी सजीव, सुन्दर, और करुण कल्पना है। रामकुमारी जी की समस्त रचनायें इसी ढंग की करुण, और व्यापक कल्पनाओं के पथ पर उड़ती हुई दिखाई देती हैं। ऐसा ज्ञात होता है, मानों सचमुच कवियित्री का हृदय संसार के घात-प्रतिघातों से पीड़ित है, मानों सचमुच संसार की नश्वरता ने उनके हृदय में ऐसी कर्कश पीड़ा उत्पन्न की है, कि उससे उनके प्राणों के तार-तार झन झना उठे हैं। रामकुमारी जी की कविता में उनके प्राणों की यही झनझनाहट है।

हिन्दी-साहित्य के सुयोग्य लेखक श्रीयुत होरीलाल जी शास्त्री आपकी कविताओं के सम्बन्ध में लिखते हैं:—"आपकी प्रतिभा सर्वतोमुखी है। कविता के मुख्य गुण तल्लीनता और रसात्मकता तो आपकी रचनाओं में कूट-कूट कर भरे हैं। साथ ही साथ जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में घटित होने वाली घटनाओं का संस्पृष्ट चित्रण भी नितान्त चित्ताकर्षक बन पड़ा है। उनमें भावुकता है, संवेदना है, और सबसे ऊपर अपने चित्त को रमा लेने वाली कल्पनाओं का समावेश, और भाषा-सौष्ठव तो आपकी निज की सम्पत्ति है। अलंकारों का प्रयोग भी केवल कविता के वाह्यरूप को सजाने के लिये ही नहीं हुआ है, किन्तु वह रसका यथेष्ट रूप में परिपाक करता हुआ चित्त को उस अनन्त की ओर खींच ले जाता है, वाह्य व्यापार

जिसकी एक लघु झलक और प्रतिबिम्ब मात्र है।"

रामकुमारी चौहान का जन्म संवत् १८५६ ई० में अगहन कृष्ण ६ को कानपुर के सीसामऊ मुहल्ले में हुआ। आपके पिता कानपुर ज़िले के पचोर ग्राम में चन्द्रवंशीय राज घराने में उत्पन्न हुये थे। यह परम विद्यानुरागी, मुक्त योगी, सुयोग्य ज्योतिषी, और अच्छे कवि थे। आप अपने माता-पिता की तीसरी सन्तान हैं। आपके एक सहोदर भाई, और बहन भी हैं। इन दोनों की भी साहित्य की ओर अभिरुचि है।

आपको बाल्यकाल ही से कविता और संगीत से प्रेम है। प्रकृति के मनोरम दृश्यों का अवलोकन करने में आपको बड़ा आनन्द आता है। आपकी रचनाओं में भी कहीं कहीं आपकी इस अभिरुचि का पता चलता है। बाल्यकाल ही से आप कवितायें भी कर रही हैं। आपकी कविताये दिनों दिन विकसित हो रही हैं, और उनमें हृदय-स्पर्शिता के गुण अधिक परिमाण में आते जा रहे हैं।

आपका विवाह झाँसी-निवासी श्रीयुत ठाकुर रत्नसिंह जी बी० ए० एल-एल० बी० से हुआ था। मनोहर और अनुकूल वातावरण पाकर आपके उल्लसित हृदय की कामनायें विकसित हो उठीं, और वे कविता के प्रवाह के रूप में बह चलीं। किन्तु कुछ ही दिनों के पश्चात् उनकी दिशा बदल गई, और कल्पनाओं ने उल्लास के स्थान पर वेदना की चादर ओढ़ ली। इसका कारण यह था, कि संसार की परिस्थितियों का इनके

[३]

अश्रु कण

हो रही है वेदना-सी आज मानस में हमारे,
छोड़ कर पीड़ा हृदय की अश्रु आये नयन द्वारे !
आज जाने क्यों द्रविन हो व्यर्थ ही यह चू पड़े हैं,
कौन-सी विस्मृति व्यथा से मौत-सी, हैं आश धारे !
रजत राका यामिनी यह, संकुचित मन मंजु मेरा,
निरख सुललित नयन-पुतली, टूट पड़ते व्योम तारे ।
आज कर-वर से न पोछो, तुम इन्हें संताप मेरे,
हैं यही दुखिया जगत के, एक आश्रय, एक प्यारे ।

[४]

मेरी समाधि

नहीं लालसा नीरद बरसें, मृदु फुहार की फुलझड़ियाँ ।
या अम्बर से तुहिन-बिन्दु सी, बिखरें मोती की लड़ियाँ ॥
नहीं कामना शशि की शीतल किरणों का हो कान्ति प्रवाह ।
दग्ध हृदय की चिर अतृप्ति में मिटे मिलन की दारुण दाह ॥

आकांक्षा यह नहीं कि, इस पर विकस उठें वे मुकुलित फूल ।
जिनके परिमल मय पराग पर अंकित है पतझड़ की धूल ॥
अभिलाषा यह नहीं बनूँ उस प्रेमी का आदान-प्रदान ।
योग वियोग आदि की जिसमें तरल व्यथा का रहे न मान ॥

नहीं चाहती जीवन मेरा बन जाये सुख का संगीत।
छिप जाये गत मधुर स्मृति की करुण कथा का जगत अतीत॥
नहीं कामना रखती हूं कुछ कोई मेरा गुण गाये।
या समाधि पर मेरी आकर सुरभित फूल चढ़ा जाये॥

राज राजेश्वरी देवी 'नलिनी'

हिन्दी-साहित्य की उदीयमान कवियित्रियों में 'नलिनी' जी का प्रमुख स्थान है। आपकी रचनाओं में आपके समुज्वल भविष्य का एक बहुत सुन्दर प्रकाश छिपा हुआ है। आपकी रचनाओं के क्रम-विकास पर ध्यान देने से यह ज्ञात होता है, कि आपके कवि जीवन का वह समुज्वल भविष्य शनैः शनैः हिन्दी-साहित्य के अधिक सन्निकट आता जा रहा है। यदि आपके विकास-मार्ग में किसी प्रकार की बाधा न उपस्थित हुई, तो इसमें सन्देह नहीं, कि थोड़े ही दिनों में हिन्दी की प्रमुख कवियित्रियों में आपका एक स्थान हो जायगा, और आपकी रचनायें हिन्दी-साहित्य की एक स्थायी सम्पत्ति बन जायँगी।

आपकी रचनायें वेदना प्रधान हैं। आपने अपने हृदय के अनुभूत भावों को बड़ी ही सुन्दरता के साथ अपनी रचनाओं में व्यक्त किया है। आपकी वेदना-सम्बन्धी कल्पनायें नवीन, आकर्षक और निष्कलंक-सी हैं। उनमें स्वाभाविकता है, सरसता है, और है हृदय को खींचने की शक्ति। वेदना को आप

राज राजेश्वरी देवी 'नलनी'

प्यार करती हैं, उसे अपने जीवन की सहेली समझती है। क्यों? यह कवियित्री के ही शब्दों में सुनिये:—

है आराध्य-अभाव यहाँ, तू आ अभाव की मूर्ति महान्!

आराध्य के अभाव में कवियित्री का जीवन-निकुंज उजड़ गया है, वैभव-शून्य हो गया है। किन्तु कवियित्री को यह ज्ञात कि उनका आराध्य पीड़ा में व्याप्त रहता है, पीड़ितों को अपनाता है। कवियित्री का सरल हृदय अपने स्वाभाविक स्वर में स्वय कह रहा है:—

"सुनती पीड़ा में व्याप्त प्रभो! मुझ को पीड़ा अपनाने दो"

'नलिनी' जी इसीलिये पीड़ा को प्यार करती हैं, उसे अपने हृदय के कोने कोने मे बसाना चाहती हैं। वे बड़े ही उल्लास के साथ पीड़ा का आह्वान करती हैं, और उसे अपने सन्निकट बुला कर उससे कहती हैं:—

मृदुल हृदय परिरम्भण कर तू, कर सहर्ष हे सजनि विहार।
जीवन के उजड़े निकुंज मे भर दे निज वैभव का भार॥

'नलिनी' जी की हृदय की यह अवस्था, उनके हृदय की यह अनुभूति, और उनकी अनुभूति की यह प्रेरणा, वास्तव में किसी भी साहित्य की मर्यादा को अक्षुण्ण रख सकती हैं। आपकी अधिकांश कविताओं में इसी प्रकार की उच्च कोटि की भावना है। ज्यों ज्यों आपकी कविताओं का विकास होता जा रहा है, त्यों त्यों आपकी उच्च कोटि की भावना भी अधिक निखरती जा रही है। एक सुप्रसिद्ध समालोचक ने आपके

सम्बन्ध में ठीक ही यह लिखा है, कि 'नलिनी' जी हिन्दी-साहित्याकाश मे एक उस तारिका के समान हैं, जिसकी ज्योति मे स्थायित्त्व है, अमरता है।

'नलिनी' जी की रचनाओं में काव्य के सभी गुण तो विद्यमान हैं ही, साथ ही आपकी रचनाओं मे हृदय की विशालता अधिक अंश में है। आपकी काव्य-कल्पना का क्षेत्र सीमित नहीं, असीमित है। इसका एक मात्र कारण केवल यह है, कि जिस वेदना को आप अपने जीवन की सखी समझती हैं, और जिसके आह्वान मे करुण-राग गाती हैं, उसमें दार्शनिकता है। आप की वेदना सम्बन्धी अधिकांश कविताओं में आपके दार्शनिक भावों का अच्छा प्रस्फुटन हुआ है। आप अपनी कोमल काव्य-कल्पना के द्वारा जिस प्रकार दार्शनिक-जगत के रहस्य को भेदने का प्रयास करती हैं, वह बहुत ही सम्माननीय और प्रशंसनीय हैं। निम्नांकित पंक्तियों में आपके दार्शनिक भावों का सुन्दर विकास हुआ है:—

किसने अनन्त पीड़ा का,
　　　　उपहार अनूप दिया है!
अज्ञात कौन, वह ?
　　　　जिसने यह निष्ठुर खेल किया है!

\+　　　　+　　　　+

पूजा का कुछ साज नहीं है,
　　　　देव, आह! दुखिया के पास।

किन्तु हार मे संचित है,
मम सरल स्नेह की सरस सुवास ॥

+ + +

तुम बनो देव आराध्य मेरे,
निर्माल्य मुझे बन जाने दो।
निज चरणों के ढिग आने दो,
मुझ को निज साध मिटाने दो !

'नलिनी' जी की जन्म-भूमि उन्नाव जिले में है। आपके पिता का नाम पं० रमाशंकर प्रसाद बी० ए० है । 'नलिनी' जी ने अच्छी शिक्षा पाई है। बाल्यकाल ही से आपका कविता की ओर झुकाव हे। आपने वास्तविक कवि-हृदय पाया है। आपकी रचनाये हिन्दी की सभी सुप्रसिद्ध मासिक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती हैं। आपकी रचनाओं मे कला के साथ ही साथ मधुरता और सरसता का अच्छा पुट रहता है। प्रमाण स्वरूप निम्नांकित कवितायें देखिये:—

[१]

वेदने !

अभ्यन्तर के निभृत प्रान्त मे,
प्राणों की सरिता के कूल !
खूब वेदने ! बाल खेल,
नयनों से बिखरा आँसू फूल।

आज हमारे प्रणय जगत मे,
सजनि ! तुम्हारा है आह्वान।
है आराध्य-अभाव यहाँ तू,
आ अभाव की मूर्ति महान।

मृदुल हृदय परिरम्भण कर तू,
कर सहर्ष हे सजनि ! विहार।
जीवन के उजड़े निकुंज में,
भर दे निज वैभव का भार !

अरी ! चयन कर ले अंचल मे,
सुभग साधना-कुसुम पराग।
चपल चरण से कुचल मसल कर,
गा तू अपना तीखा राग।

[२]

साध मिटाने दो !

आँसू की तरल तरंगों में आहों के कण बह जाने दो।
उस क्षुब्ध अश्रु की धारा मे उच्छ्वास-तरणि लहराने दो ॥
ऊषा की रक्तिम आभा से लोचन रंजित हो जाने दो।
अन्तर्वीणा को व्यथा-भरी बस करुण रागिणी गाने दो ॥
सुनती पीड़ा में व्याप्त प्रभो ! मुझको पीड़ा अपनाने दो।
निज प्राण-विभव से मुझे देव ! निज चरण अलंकृत करने दो ॥
पीड़ा से करके प्यार मुझे अपने ही में मिल जाने दो ॥
जैसे तुमको पाना दुष्कर ऐसे ही तो फिर पाने दो ॥

तुम बनो देव आराध्य मेरे निर्माल्य मुझे बन जाने दो।
निज चरणों के ढिग आने दो! मुझको निज साध मिटाने दो॥

[३]

गीत

प्रिय बड़े सुकुमार कोमल,
यह मधुर अरमान मेरे!
हों किसी को शाप, मुझको—
तो यही वरदान मेरे!

रे कुशल कवि विश्व के तू!
छू न गीले गान मेरे!
विकल सब हो जायँगे—
युग-युग के अनुष्ठान मेरे!

हों अप्रिय जग को भले ही,
प्रिय मुझे अरमान मेरे!
निधन उर की जीर्ण झोली,
की विभूति महान मेरे!

तारकों की यूथिका से-
पुहुप से वन वीथिका में!
देव! शतदल मे खिलेंगे,
यह मृदुल अरमान मेरे!

थक गये हैं खोजते जिसको-
विकल यह गान मेरे!

शून्य से मिल कर सिसकते,
तिरस्कृत आह्वान मेरे।

हो गये पाषाण वह तो,
प्रेम के भगवान मेरे।
वह दिवस भी हो गये हैं,
आज स्वप्न अजान मेरे॥

शेष है स्मृति चिह्न उनका,
वह मधुर अरमान मेरे !
प्रहर भर के प्रिय मिलन की,
है यही पहचान मेरे !

[४]

कुसुमाकर !

मानस-मधुवन में आया है सजनि ! आज वेदना-वसंत।
विपुल व्यथा की सकरुण सुषमा छाय रही है आज अनन्त॥
करुणा-कोकिल सुना रही है, अपना विह्वल विकल विहाग।
नयन-कली की मृदु प्याली में भरा हुआ है अश्रु-पराग॥
चलता है उच्छ्वास-मलय-नैराश्यों की सौरभ के साथ।
ढुलका रहा विषाद हृदय को हाला भर-भर दोनों हाथ॥
अन्तर के छाले पलाश-वन-सम शोभित हैं अरुण अपार !
व्याप्त हो रहा है मधुमय पीड़ाओं के वैभव का भार॥

+ + +

कितना सुन्दर कुसुमाकर का विश्व-कुंज में आ जाना।
पर कितना मादक मेरे मधुवन में उसका मुसुकाना॥

[५]

मधुर मिलन

गोधूली के अंचल में,
छिप गई सुनहली ऊषा।
दिनकर चल दिये विदा हो,
खुल गई गगन मंजूषा॥

२

सूने अम्बर पर बिखरीं,
निशि की विभूतियाँ सारी।
राका-राकेश-मिलन की,
आयी थी मधुमय बारी॥

३

मुसुकाती इठलाती-सी,
कामिनी विभावरी आई।
जग-शिशु मुख पर उसने निज,
अलकावलियाँ बिखराईं॥

४

वह सूने पन की रानी,
सूनापन लेकर आई।

सारी संसृति में उसकी,
मुसुकान मनोहर छाई ॥

५

निज वैभव पर गर्वित हो,
हँसती थी रजनी-बाला ।
आये फिर कर में लेकर,
निशिनाथ सुधा का प्याला ॥

६

सारी संसृति मे शशि ने,
स्वर्गीय सुधा ढुलकाई ।
चहुँ ओर असीम अलौकिक,
अनुपम मादकता छाई ॥

७

करता था जग अवगाहन,
शशि-सुधा सुभग लहरों मे ।
उल्लास असीम भरा उन,
अह्लादों के प्रहरों में ॥

८

गाती निशि निज वीणा पर,
नीरव संगीत निराला ।
श्रुति-पुट में रस सरसा वह,
जग को करता मतवाला ॥

९

मेरा हिय उलझ रहा था,
उद्‌गारों की उलझन में।
रह-रह पीड़ा होती थी,
अभिलाषा के कंपन में॥

१०

आशाओं के फूलों की,
बिखरीं पंखड़ियाँ प्यारी।
उच्छ्वासों के झोंकों मे,
उड़ गई आह ! वह सारी॥

११

व्यथा सुषुप्त करवट से,
हो उठी प्राण मे तड़पन।
प्राणों की पागल पीड़ा—
से हुआ आह ! मूर्च्छित मन॥

१२

तब शान्ति मयी निद्रा मम,
गीली पलकों पर छाई।
इस करुण दशा पर मानों,
उसको थी करुणा आई॥

१३

दे शान्ति मुझे उसने यों,
स्वप्नों के साज सजाये।

धन मेरी आशाओं के,
उसने मुझको दिखलाये ॥

१४

निशि की काली अलकों में,
जो श्यामल वेष छिपाये—
वह करुणा मय थे मेरे,
मृदु स्वप्न जगत में आये ॥

१५

सुख सीमा हुई अपरिमित,
देखा जब प्रिय मानस-धन।
कृत कृत्य हो गई करके,
करुणामय का शुभ दर्शन ॥

१६

उपमा क्या हो सकती है,
कोई मेरे उस सुख की।
असमर्थ जिसे कहने में,
हो जाता है सत्कवि भी ॥

१७

उन पद-पद्मों में तत्क्षण,
निज मानस-पुष्प चढ़ाया।
बनकर उपासिका स्वयमपि,
उनको आराध्य बनाया ॥

१८

उस क्षण-सुख में जीवन का,
सारा उल्लास खिला था।
उल्लासों के अंचल में,
पीड़ा का सार छिपा था॥

१९

ऊषा के अवगुंठन में,
छिप गया सुनहला सपना।
मेरे सुख की लाली ले,
शृंगार किया, हा, अपना॥

पुरुषार्थवती देवी

पुरुषार्थवती देवी हिन्दी के काव्य-गगन की एक जाज्वल्यमान तारिका थीं। उनके प्रकाश में स्थिरता थी, एक प्रकार की अमरता थी। यदि नश्वर जगत उन्हें अपनी नश्वरता में छिपा न लेता, तो इसमें सन्देह नहीं, कि वे हिन्दी-साहित्य में अमर होकर रहतीं। ये पंक्तियाँ उनकी रचनाओं में झलकती हुई ज्योति के आधार पर लिखी जा रही हैं। उनकी रचनाओं में उनकी ऊँची कल्पना है, उनका विशाल हृदय है। उनकी कल्पनायें नवीन, सरस, और निष्कलंक हैं। उनमें प्राणों का स्पर्श करने की शक्ति हैं। वे हृदय के जिन आवेगों को लेकर उड़ती हैं, उन्हें पढ़ने वाले के हृदय मे भी उत्पन्न करती हैं। उनकी रचनाओं की यह सबसे बड़ी विशेषता है। वे अपने भावों के प्रवाह में पाठकों के हृदय को जिस प्रकार बहा ले जाती हैं, वह उनके कवि-जीवन को महत्त्व प्रदान करने वाला एक विशेष साधन है।

पुरुषार्थवती देवी जी की रचनाओं में एक प्रकार का दुःख

वाद है। उनकी समस्त रचनाये दुःखवाद की छाया में करुणा का राग अलापती हुई दिखाई देती हैं। असमय में ही काल-गर्भ मे चली जाने के कारण यद्यपि उनके दुःखवाद का उचित विकास और उचित प्रस्फुटन न हो सका, किन्तु जो कुछ है, वह विशाल है। विशाल इसलिये है, कि उसमें एक रहस्य है, दार्शनिकता है। उनके दार्शनिक भाव वेदना और करुणा के साथ मिलकर बहुत ही मर्मस्पर्शी वन गये हैं।

आपकी रचनाओं की समालोचना करते हुए मासिक विश्व मित्र मे एक सुप्रसिद्ध समोलोचक ने लिखा है:—'पन्त' जी के पल्लव और 'वीणा' के बाद हिन्दी की कविताओं का ऐसा अच्छा संकलन हमे कहीं अन्यत्र देखने को नहीं मिला। हमें अत्यन्त खेद तथा लज्जा के साथ स्वीकार करना पड़ता है, कि लेखिका के नाम से और उनकी कविताओं से हम आज पहले-पहल परिचित हुये हैं। एक आश्चर्यमयी प्रतिभा शालिनी स्त्री कवि ऐसी सुन्दर, सरस, और भावुकता पूर्ण कविताओं को लिखकर इह लोक से सिधार भी चुकी और हम उसके नाम से भी परिचित न रहे, इस अक्षम्य दोष के लिये हमारी उदासीनता बहुत कुछ अंश मे दायी हो सकती है। तथापि हिन्दी के उन "प्रोपेगण्डिस्ट" आलोचकों का भी इसमें कुछ कम दोष नहीं है, जो अपने किसी विशेष गुट्ट के लेखक अथवा लेखिकाओं की प्रशंसा में "अहो रूप महो ध्वनिः" के नारे लगाते रहते हैं और पक्षपात-हीन होकर वास्तविक योग्यता की खोज

पुरुषार्थवती देवी

पुरुषार्थवती देवी हिन्दी के काव्य-गगन की एक जाज्वल्यमान तारिका थीं। उनके प्रकाश में स्थिरता थी, एक प्रकार की अमरता थी। यदि नश्वर जगत उन्हें अपनी नश्वरता मे छिपा न लेता, तो इसमें सन्देह नहीं, कि वे हिन्दी-साहित्य में अमर होकर रहतीं। ये पंक्तियाँ उनकी रचनाओं मे झलकती हुई ज्योति के आधार पर लिखी जा रही हैं। उनकी रचनाओं में उनकी ऊँची कल्पना है, उनका विशाल हृदय है। उनकी कल्पनायें नवीन, सरस, और निष्कलंक हैं। उनमें प्राणों का स्पर्श करने की शक्ति हैं। वे हृदय के जिन आवेगो को लेकर उड़ती हैं, उन्हें पढ़ने वाले के हृदय में भी उत्पन्न करती है। उनकी रचनाओं की यह सबसे बड़ी विशेषता है। वे अपने भावों के प्रवाह में पाठको के हृदय को जिस प्रकार बहा ले जाती हैं, वह उनके कवि-जीवन को महत्त्व प्रदान करने वाला एक विशेष साधन है।

पुरुषार्थवती देवी जी की रचनाओं में एक प्रकार का दुःग

वाद है। उनकी समस्त रचनायें दुःखवाद की छाया मे करुणा का राग अलापती हुई दिखाई देती हैं। असमय मे ही काल-गर्भ में चली जाने के कारण यद्यपि उनके दुःखवाद का उचित विकास और उचित प्रस्फुटन न हो सका, किन्तु जो कुछ है, वह विशाल है। विशाल इसलिये है, कि उसमें एक रहस्य है, दार्शनिकता है। उनके दार्शनिक भाव वेदना और करुणा के साथ मिलकर बहुत ही मर्मस्पर्शी बन गये हैं।

आपकी रचनाओं की समालोचना करते हुए मासिक विश्व मित्र मे एक सुप्रसिद्ध समोलोचक ने लिखा है:—'पन्त' जी के पल्लव और 'वीणा' के बाद हिन्दी की कविताओं का ऐसा अच्छा संकलन हमे कहीं अन्यत्र देखने को नहीं मिला। हमें अत्यन्त खेद तथा लज्जा के साथ स्वीकार करना पड़ता है, कि लेखिका के नाम से और उनकी कविताओं से हम आज पहले-पहल परिचित हुये हैं। एक आश्चर्यमयी प्रतिभा शालिनी स्त्री कवि ऐसी सुन्दर, सरस, और भावुकता पूर्ण कविताओं को लिखकर इह लोक से सिधार भी चुकी और हम उसके नाम से भी परिचित न रहे, इस अक्षम्य दोष के लिये हमारी उदासीनता बहुत कुछ अंश मे दायी हो सकती है। तथापि हिन्दी के उन "प्रोपेगण्डिस्ट" आलोचकों का भी इसमें कुछ कम दोष नहीं है, जो अपने किसी विशेष गुट्ट के लेखक अथवा लेखिकाओं की प्रशंसा में "अहो रूप महो ध्वनिः" के नारे लगाते रहते हैं और पक्षपात-हीन होकर वास्तविक योग्यता की खोज

के लिये कभी लालायित नहीं रहते। सामयिक-पत्रों में पेशेवर साहित्यिकों की निन्दा-स्तुति की अनावश्यक चर्चा के बदले यदि हमारे साहित्यालोचक गण वास्तविक प्रतिभा-सम्पन्न लेखक-लेखिकाओं की अपरिचित अथवा अल्प परिचित रचनाओं को प्रकाश मे लाने की चेष्टा करते, तो हिन्दी-साहित्य-क्षेत्र मे आज धांधा गर्दी और 'तू-तू मै-मैं' का बोल बाला न होता।

श्रीमती पुरुषार्थवती की एक-एक कविता हमें "अनाघ्रातं पुष्पम्" की तरह नवीन और निष्कलंक लगी है। उनकी सरसता और कमनीयता जैसी अतुलनीय है, विचारों की प्रौढ़ता और भावों की विचित्रता मे भी उनका स्थान उसी प्रकार निराला है। मालूम हुआ है, कि केवल उन्नीस वर्ष की अवस्था में ही उनका प्राणान्त हो गया।

इस कारण उनकी परवर्ती कविताओं से रहस्यमय भावों की गम्भीरता हमें और भी आश्चर्य-चकित करती हैं। उनके 'रोमाण्टिक' भाव रहस्य मय हैं। सन्देह नहीं, तथापि अमावस्या के गहन तिमिर के आवरण-जाल के भीतर स्वच्छ, तरल, तारकाओं की भाँति टिमटिम करते हैं। प्रारंभ की दो चार कवितायें शायद एक दम अपकावस्था में लिखी गई थीं, इसलिये उनमे हिन्दी की अर्थ हीन कविताओं के "छाया वादी महाकवियों" की छाया स्पष्ट रूप में पायी जाती है। पर पीछे की कविताओं मे लेखिका का अपना पन, उसकी निगूढ भावुक

अन्तरात्मा से निःसृत अपूर्व, अकलंक, शुभ्र फेनोच्छ्वसित निर्झर-धारा ही प्रवाहित हुई है। सुन्दर छन्दों की विचित्रता तथा झंकार से इस धारा की महिमा और भी बढ़ गई है। कविताओं से पता चलता है, कि लेखिका ने अपने प्रत्येक भावोच्छ्वास को अपने हृदय में भली भाँति अनुभूत करके फिर उसे व्यक्त किया है। इसी कारण उनकी "अन्तर्वेदना" सीधी मर्म मे आकर तीव्रता से आघात करती है।"

श्रीमती पुरुषार्थवती जी का जन्म सन् १९११ के अक्टूबर महीने में हुआ था। आपके पिता का नाम लाला चिरंजीत लाल जी था। १९३० ई० के अगस्त महीने में आपका विवाह हिन्दी के सुप्रसिद्ध कहानीकार श्रीयुत चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार जी के साथ हुआ। विवाह के एक ही वर्ष पश्चात् सन् १९३१ के फ़रवरी महीने में आपका देहावसान हो गया। आपकी समस्त रचनायें विवाह के पूर्व की लिखी हुई हैं। आपकी रचनाओं का 'अन्तर्वेदना' के नाम से एक संग्रह भी प्रकाशित हुआ है। नीचे हम आपकी कुछ कवितायें उद्धृत कर रहे हैं:—

[१]

पतझड़

इन पंखों मे तड़प उठा है, यह मेरा मृदु हास।
खिल कर भी इसमे पाया है भीना-भीना ह्रास॥
बाल-सुलभ-चंचलता खेली पंखड़ियों पर प्यार।
कितने ही बसन्त मुरझाये यह विधु-वदन निहार॥

विशद नील नभ से करती थी चन्द्र-सुधा-रस-पान।
मन्द अनिल से आन्दोलित हो, गाती नीरव गान॥
गर्व, दर्प सब खर्व हुआ अब, गिरी, हुई हत-मान।
करुणा-क्रन्दन है केवल अब होने तक अवसान॥
हो गर्वित, उन्मत्त विटप पर झूम रहे हो फूल।
मुझे देख, फूले हो, जाना निज अस्तित्व न भूल॥

[५]

दर्शन-लालसा

नाथ ! पड़ा सूना मन-मन्दिर कब उसको अपनाओगे।
नेत्र थक गये राह देखते कब तुम फिर से आओगे॥
हूं पगली मतवाली या मैं फिर भी हूं चरणों की दास।
प्रेम-तरंग हिलोरें लेतीं आओ एक बार फिर पास॥
मानस-सर के हंस तुम्हीं हो, हो मेरी तंत्री के तार।
मेरी जीवन-नैय्या के हो कर्णधार, पकड़ो पतवार॥
देकर झूठे धैर्य नाथ ! अब नहीं मुझे ठग पाओगे।
देर करोगे तो क्या होगा, शून्य कुटी को पाओगे॥

रामेश्वरी देवी 'गोयल'

रामेश्वरी देवी गोयल

रामेश्वरीदेवी गोयल हिन्दी-साहित्य की उदीयमान कवियित्री थीं। आप के हृदय का काव्यांकुर अभी उग ही रहा था, कि नियति ने आपको अपने पास बुला लिया। आप की मृत्यु से हिन्दी-साहित्य की एक जगमगाती हुई ज्योति सदा के लिये उससे दूर हो गई। आपने अच्छी कवि प्रतिभा पाई थी। उच्च कोटि की शिक्षा ने उसमे और रग ला दिया था। आपने जो कुछ लिखा है, उसमें आपकी सुन्दर कवि-प्रतिभा की झलक मिलती है। यदि क्रूर काल आप को अपने गर्भ मे छिपा न लेता, और आप की कविता को विकसित होने का अवसर प्राप्त होता, तो हिन्दी-साहित्य की कवियित्रियो मे आपका एक विशेष स्थान होता, और आप अपनी सुललित रचनाओं के द्वारा हिन्दी-जगत को अधिक गौरवान्वित कर सकतीं।

आप बड़ी भावुक, उदार, और सरल हृदय की थीं। आपके हृदय मे वास्तव में एक कवि था, जो भावुक था, और निराशा

के लोक में विचरण करता था। आपकी रचनायें निराशा और पीड़ा की भावनाओं से ओत प्रोत है। आपकी अनुभूति सुन्दर और अभिव्यक्ति आपके उज्वल भविष्य की परिचायिका है।

गोयल जी सन् १९११ के फरवरी महीने मे झाँसी मे पैदा हुई थीं। १९३० में प्रयाग विश्व विद्यालय से आपने एम-ए० की परीक्षा पास की। एम-ए० की परीक्षा पास करने के पश्चात् आप प्रयाग आर्य कन्या पाठशाला की प्रधान अध्यापिका हो गईं, और दो-तीन वर्ष तक इस पद पर रहीं। इसी समय आपका विवाह हुआ, और आप विवाह के कुछ ही दिनों पश्चात् अपने परिवार के साथ ही साथ हिन्दी-जगत को सूना करके इस संसार से चल बसीं।

आपको कविता और संगीत से अधिक प्रेम था। कविता और संगीत के अध्ययन में ही आप अपना अधिकांश समय व्यतीत करती थीं। विद्यार्थी अवस्था से ही कविता की ओर आपकी अभिरुचि थी। आपकी रचनायें दिनों दिन विकास को प्राप्त हो रही थीं। हिन्दी की सभी सुप्रसिद्ध मासिक पत्र-पत्रिकाओं में आपकी रचनायें छपती थीं, और सम्मान के साथ पढ़ी जाती थीं। निम्नांकित कविताओं मे आपकी काव्य-कल्पना का अच्छा प्रस्फुटन हुआ है:—

[१]

तुम्हारी संजीवन मुसुकान,
जगा देती म[illegible] का संसार।

पुलक, भावुक नभ भी अनजान,
लुटा देता अपना शृंगार ।
लुभा लेता तटस्थ के प्राण,
बिछा मायावी मुक्ता जाल,
बना देता पागल-सा कौन,
व्यथा की अविकल मदिरा ढाल ।

अमित कलियों का कोमल गात,
ढूँढ़ता व्याकुल हो विश्राम ।
सुला लेता सुधांशु निज अंक,
बिछा कर शीतलता अभिराम ॥
छोड़ जाता आँसू कोई–
दुःखद-सा स्वप्न, दीन नैराश्य ।
पोंछ लेता चुम्बन में एक,
हँसा जाता प्राची का हास्य ॥

किन्तु मानस का टूटा तार,
छेदते रहते आकुल प्राण ।
स्वप्न-सा खो जाता मतिमान,
सुखद जीवन का सुमधुर गान ॥
न आने देता पुनः बसन्त,
छेड कर अपनी आकुल तान ।
ढहा देता आशा के स्वप्न,
बहा देता विवेक नादान ॥

[२]

सजनि ! है यह कैसा पागलपन !

नीरव आँधी शून्य गगन मे,

मचल मचल वह जाती।

शुष्क अधर की संचित लाली,

झर झर झर झर जाती॥

न रहता है किंचित अपनापन,

सजनि ! है यह कैसा पागलपन !

नयन हठीले सो सो जाते,

मधुमय के मधुवन मे।

मन भावन आकर खो जाते,

स्वप्नों की उलझन मे॥

न खोने पाता यों सूनापन,

सजनि, है कैसा यह पागलपन !

पीड़ा मय तन्द्रा मे भी सखि,

याद उसी की आती।

निठुराई, निर्मम के उर

चुभती, पर खोज न पाती॥

सजनि, क्या ऐसा ही है बन्धन ?

सजनि है यह कैसा पागलपन ?

[३]

तुम्हारा भोला-सा उपहास,

भेद जब जाता तन मन प्राण,

अधर की रिझती-सी मुसुकान,
नयन छलका देते नादान ॥
अरे अनजान प्रेम का मोल,
मधुरिमा मय विकसित अनुराग,
समझ, सौंपा सर्वस सुकुमार,
आह ! पीड़ा दी किसने घोल ?
समझ कर किसने उसे ठठोल ?
किया विच्छिन्न दीन निर्माल्य,
अरे उस प्रेमी की उद्भ्रान्त–
'चाह की आह' हाय ! दी खोल !
राग से सीखा आज विराग,
हास्य का मृदु अवगुंठन डाल,
वेदना सिसक-सिसक कर हाय,
न जर्जर कर दे यह अभिसार !
गूँज जावे तब वह परिहास,
पिघल ढल सो जावे विश्राम,
कहीं पा फिर तेरा आभास,
न उठ जावे वह ललक-ललाम ।

[४]

झिल मिल करते थे तारे,
आशा के सूने नभ में ।
मलयानिल-सी निश्वासे,

उठती थीं अन्तस्तल में ॥
उर की निरन्त पीड़ा ने,
सोता उन्माद जगाया।
अपने कम्पित हाथों से,
वीणा को आन उठाया॥
हाँ तार सभी उसमें थे,
निर्दय! तू ने क्यों तोड़ा?
ज्यों-त्यों मैंने फिर उसको,
कर यत्न बहुत था जोड़ा॥
उन आँखों की मदिरा से,
भर कर अवदान कटोरा।
होठों तक ही लाई थी,
तू ने आ क्यों भ...
बजती कैसे अब वीणा,
टूटी ...
हो खिन्न दिया ...
रख दू...
वह जीवन आ जी...

बैठा रोता है अब ...
यह भग्न ...

[५]

आशा-हीन दलित पड़े जो दीन भूतल में,
जीवन की ज्योति नव्य उनमें जगाती तू।
शोक नत भारत के भव्य भाल को समोद,
शान्ति का पढ़ा के पाठ धीरे से उठाती तू।
त्याग का बना के मंत्र धैर्य का सिखा के तंत्र,
देशवासियों को आज योगी है बनाती तू।
देकर सुबुद्धि 'शक्ति' भव्य भारतीयता की,
विजय पताका देवि! आज फहराती तू।

श्री विष्णुकुमारी श्रीवास्तव 'मंजु'

हिन्दी-साहित्य की कवियित्रियों मे 'मंजु' जी अपना एक विशेष स्थान रखती हैं। यद्यपि प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण आपकी काव्य-कल्पना का अधिक विकास न हो पाया, तथापि आपकी रचनाओं में विकास के गुण विद्यमान हैं। आपकी रचनाओं में हृदय की अनुभूति की अच्छी अभिव्यक्ति है। आपने जो कुछ लिखा है, हृदय के साथ लिखा है। अनुभूत भावों को व्यक्त करने में आपको अधिक सफलता भी प्राप्त हुई है। यही कारण है, कि आपकी रचनाओं में एक मिठास और एक माधुर्य है।

निराशा और दुःखवाद आपकी काव्य-कल्पना का आधार है। आपकी निराशा मे एक गहरी करुणा है, जो कि प्राणों पर अपना अधिक प्रभाव डालती है। निराशा का चित्रण करते-करते आप स्वयं भी निराशा की मूर्ति बन गई हैं। देखिये:—

आशा के भग्न भवन में,
प्राणों का दीप जलाये।

उत्सुक हो स्वागत पथ-पर,
बैठो थी ध्यान लगाये।

पंक्तियाँ साधारण सी हैं, किन्तु हृदय पर अधिक चोट रती है। यही तो कवि की स्वाभाविकता और सफलता है, कि ह अपने हृदय के गहरे भावों को भी सीधी-सादी पंक्तियों मे न्द कर दे और वे पाठकों के हृदय को अपने ही साँचे में ाल लें। 'मंजु' जी की रचनाओं मे यह गुण अधिक मात्र में वेद्यमान हैं। मुझे यहाँ अत्यन्त दुख के साथ लिखना पड़ता है, कि उक्त आन्तरिक काव्यालंकारों से युक्त होने पर भी 'मंजु' जी की रचनाये हिन्दी-साहित्य मे अधिक सम्मान न प्राप्त कर सकीं। इसका कारण केवल यही हो सकता है, कि वे प्रोपेगण्डा से सदा दूर रहीं। जीवन की प्रतिकूल परिस्थितियों ने उन्हें कभी इस ओर देखने का अवसर भी न दिया। किन्तु फिर भी 'मंजु' जी ने हिन्दी-साहित्य की कवियित्रियों मे अपना एक स्थान वना लिया है। ऐसा स्थान वना लिया है. जो चिर काल तक इसी प्रकार वना रहेगा।

'मंजु जी मे स्वाभाविकता का अधिक विकास है। उनके निराश हृदय ने निराशा का वहुत ही स्वाभाविक चित्रण किया है। उनके चित्रण में उनका एक अपनापन है। कहीं-कहीं उनका निराशावाद अधिक गंभीर भी हो उठा है। जैसे:—

टूटे वन्धन, पिया हलाहल,
सूखा तरु हरि आया।

छूट रहा जग, भूला जीवन,
यों उन्मत्त बनाया।

निराशावाद की ये उच्च कोटि की पंक्तियाँ साहित्य-जगत में 'मंजु' जी की स्थिरता के लिये पर्याप्त हैं। 'मंजु' जी की कविताओं का अभी तक कोई संग्रह नहीं प्रकाशित हुआ है, किन्तु उनकी जो स्फुट कवितायें हमारे सामने हैं, उनके आधार पर हम यह कह सकते हैं, कि 'मंजु' जी का कवि वास्तविक कवि है। उसमे कवि प्रतिभा है, कवि कर्म को जागृत करने की शक्ति है। अधिक दुख के साथ यह लिखना पड़ता है, कि आज कल 'मंजु' जी ने लिखना कम कर दिया है। यदि वे बराबर लिखती रहतीं, और उनकी काव्य-कल्पना को विकाश के साधन उपलब्ध होते, तो इसमें सन्देह नहीं, कि वे अपने इस स्थायित्व को और भी अधिक दृढ़ बना लेतीं।

'मंजु' जी सफल कवियित्री होने के साथ ही साथ सुन्दर लेखिका भी हैं। आपके लेख बहुत ही सुलझे हुये और भाव-पूर्ण होते हैं। आपकी 'मीरा मन्दाकिनी' नाम की एक पुस्तक भी हमें देखने को मिली है। इस पुस्तक में मीरा के पदों पर आपने जो प्रकाश डाला है, वह स्तुत्य है।

श्रीमती विष्णुकुमारी श्रीवास्तव का जन्म १९०३ ई० के अगस्त महीने में एक सुप्रसिद्ध कायस्थ कुल में हुआ था। आपके परिवार के लोग बड़े प्रतिष्ठित और शिक्षित हैं। आपने

भी अच्छी शिक्षा पाई है। आपके विचार बड़े ऊँचे, और परिमार्जित है।

नीचे हम आपकी कुछ रचनायें उद्धृत करते है:—

[१]

वन सन्ध्या

गरज घुमड़ कुछ बरस चुके,
जब थकित हुये वर वारिद वे—
तब सान्ध्य गगन की लाली मे,
सौन्दर्य बिखेरा गिरिवर ने।

रजत, स्वर्ण, नीले पीले,
मुक्ताभ श्याम नारंजी से,
कासनी अबीरी सिन्धूरी,
औ हरित बैजनी साड़ी से—

अद्भुत शृंगार बनाये वह,
चढ़ चली प्रकृति अवनी उर पर।
बन-बीहड़ वाथिन भरी सभी,
अनुराग राग की लाली से।

तब छोड़ क्षितिज से पिचकारी,
बसुधा की छाती रँगने मे।
तल्लीन मुग्ध दिव शेष हुये,
सौभाग्य पिटारी गिरी महा।

कल कल निनाद से पूरित हो,
बन मेदिनि राग अलाप उठो।
पक्षी-कुल कलरव गुंजन से,
नीरव उपत्यका गूँज उठी।

इस प्रेमालिंगन चुम्बन में,
इस प्रेम-फाग कल क्रीड़न में,
कब सन्ध्या हुई न जान सके,
कब वियोग की घड़ी घुसी।

हा हन्त ! भाग्य दुर्दैव बली,
सौभाग्य सूर्य हा छोड़ चला,
तारों मिस ताक उठी रजनी,
जली चिता ज्वाला धधकी।

बढ़ा धुआँ सागर उमड़ा,
व्याकुल हो पक्षी चीख उठे,
स्तम्भित दीन हुये सभी,
चुपचाप वहे रोते-रोते।

असहाया दीना प्रकृति हुई,
कुन्तलित केश, खोले रोई,
थी चली मिटाने विरह-व्यथा,
रजनी ने आकर कैद किया।

बिलख विश्व सब। मौन हुआ,
मुँदे नैन आँसू छलके,

तम का आवर्तन बढ़ आया,
जा डूबी सन्ध्या सागर में।

[२]

भ्रान्ति

छाया प्रकाश की यह नित यवनिका गिराना,
यों लालसा बढ़ा कर फिर खेलना मिचौनी।
सीखा कहाँ था, तुमने, जड़ को सचेत करना,
उसको सदा सजाना दे हार आँसुओं का।
सच देव तुम बड़े ही पक्के छले खिलाड़ी,
कण-कण उड़ा उड़ा कर ब्रह्माण्ड को मिटाते।
रज-कण मिला-मिला कर, फिर विश्व को रचाते,
रविकर, यथा सलिल कण फिर सब समेट लेते।
हम दौड़ते पकड़ने तुम दूर भागते हो,
हम दूर जा भटकते, पाते तुम्हे निकट ही!
जग पूछता अहर्निश तुम कौन हो पहेली?
मंदिर व मस्जिदों को तेरा पता मिले क्या?
हैरान हम हैं तुमसे, पायें कहाँ तुम्हें अब,
कुछ भी न सोच पाते, तम मे सदा अकेले।
इस प्राण और जग का अणु-अणु बना है प्यासा,
करुणा की बूँद ही कुछ देती पता तुम्हारा।
इससे ही रो रहे हैं आओगे क्या कभी तुम?
इस ओर नाथ तेरे पद-पद्म क्या पड़ेंगे?

संज्ञा ही सारी डूब गई ।
गिरि माला के पर कोटे में,
आ ठीक क्षितिज की छाती पर,
तम का अवगुंठन ऊँचा कर,
रजनी ने झाँका प्रियतम को ।

+ + +

ऊषा ने जब आँखें खोलीं,
तब क्लान्त चन्द्र सोता पाया,
शर्मायी आँखों से नलिनी,
झट ताक छिपी वन गह्वर में ।

मंगला 'वालपुरी'

मंगला वालूपुरी

हिन्दी-साहित्याकाश से अभी एक जाज्वल्यमान तारिका झिल मिला कर सदा के लिए उससे विलीन हो गई। उसकी उस झिल मिलाहट से ही जो एक प्रकाश-रेखा हमारी आँखों के सामने खिंच गई है; वह उसके सुन्दर और उज्वल भविष्य की सूचना देती है। ऐसे सुन्दर भविष्य की सूचना देती है, जिसमें साहित्य की अमरता होती, देश और समाज की सेवा के लिये होती उत्कट भावना! उस तारिका के नाम से सारा हिन्दी-जगत भी परिचित होगा,—श्री मंगला वालूपुरी। मंगला जी एक उच्च कोटि की कवियित्री थीं। यों तो उनके हृदय में देश के प्रति प्रगाढ़ भक्ति भी थी, किन्तु हिन्दी-जगत उन्हें एक उच्च कोटि की कवियित्री ही के रूप में जानता है। वे थोड़े ही दिनों तक हिन्दी-जगत के रंगमंच पर रह पाईं, किन्तु इतने दिनों में ही उन्होंने जो कुछ लिखा है, उससे उनके हृदय के कवि का भली भांति परिचय मिल जाता है। वह कवि वास्तविक कवि था। उसकी कल्पनायें कोमल और सरस तो थी हीं,

'सत्य' और 'सौन्दर्य' की भावना से लसी हुई थीं। दुख है कि वह कवि, जिस हृदय में स्थित था, वह पंछी की भांति अपने कूंचे से निकल कर संसार से उड़ गया।

मंगला जी की कुछ थोड़ी सी ही कवितायें हमें प्राप्त हो सकी हैं, किन्तु जो प्राप्त हो सकी हैं, उन के आधार पर हम निश्चय रूप से यह कह सकते हैं, कि मंगला के रूप में स्त्री-कवि-साहित्य का एक बहुत बड़ा 'कल्याण' संसार से लुट गया। 'मंगला' यदि संसार में रह पातीं, तो इसमें सन्देह नहीं, कि स्त्री-कवि-साहित्य को उनसे एक नया जीवन मिलता। आश्चर्य है, असमय में ही मुरझा जाने वाली इस कवियित्री की कविताओं का कोई संग्रह प्रकाशित न हो सका। यह इस दृष्टि से अधिक आवश्यक है, कि कवियित्री की रचनाओं में हमें एक ऐसी अमरता दिखाई देती है; जो कविता-जगत के गौरव पर एक सुन्दर झलक उत्पन्न कर सकती है। भाव की दृष्टि से, भाषा की दृष्टि से, और कल्पना की दृष्टि से भी कवियित्री में एक सुन्दर वैचित्र्य है। ऐसा वैचित्र्य है, जिसमें जीवन है, जागृति है, और है प्राणों को प्राणवान बनाने की शक्ति। देखिये क्या यह सत्य नहीं है:—

मेरे नयनों के मोती कन
आकुल उद्‌भ्रान्त बने झरते,
ये मेरे घन पल पल घन घन,

+ + +

मेरी अब सहचरी बनी है,
आँसू की मृदु माला,
कब हाथों से छूट गया,
औचक सुख-रस का प्याला।

इसी प्रकार मंगला जी की संपूर्ण रचनाओं में उच्च कोटि के भाव परिलक्षित होते हैं। किसी-किसी रचना में दार्शनिकता की सुन्दर झलक भी दिखाई देती है।

हमारे राष्ट्र और साहित्य के लिये काशी का एक परिवार गौरव की वस्तु बन गया है। विविध विषयों के काण्ड पंडित श्री सम्पूर्णानन्दजी के नाम से समूचा देश और सारा साहित्य-संसार परिचित है। उनके छोटे भाई, हास्य रस के माने हुए लेखक, श्री अन्नपूर्णानन्द जी और प्रतिभाशाली पत्रकार श्री परिपूर्णानन्द जी भी हिन्दी के गौरव हैं। उनके सुपुत्र श्री सर्वदानन्द जी वर्मा की पैनी कलम भी हिन्दी-संसार का ध्यान पर्याप्त आकृष्ट कर चुकी है। ऐसे परिवार और वायुमंडल में आज से लगभग २० वर्ष पहले एक झिलमिल तारिका का उदय हुआ मंगला के रूप में। मंगला श्री अन्नपूर्णानन्द जी की प्रथम संतान थीं। जन्म के लगभग साल ही भर बाद आपकी माता जी का देहान्त हो गया। शुरू में आपका लालन-पालन अपने नाना, रायबहादुर मुंशी कामताप्रसाद रिटायर्ड दीवान बीकानेर की देख रेख में उन्हीं के घर होना प्रारंभ हुआ, किन्तु होश सँभालते ही आप अपने घर आ

गयीं। बचपन दादी की गोद मे बीता। परिवार मे मगला की प्रतिभा और हाज़िरजवाबी की चर्चा होने लगी। स्कूल मे दाखिल हुईं, पर अभी प्रारंभिक कक्षाएँ भी न पार कर पायी थीं कि पिता ने, जो आधुनिक ढंग की स्त्री शिक्षा के कट्टर विरोधी हैं—हालाँ कि आप बरसों विलायत में रह चुके है—आपको स्कूल से उठा लिया। घर ही पर हिन्दी अंगरेजी और इतिहास आदि की शिक्षा प्रारंभ हुई। किशोर अवस्था मे पदार्पण करते करते आपकी उक्त विषयों में काफी पैठ हो गयी और तभी आपने कलम उठाया। आपकी शुरू की रचनाये जबलपुर से प्रकाशित तथा आपके चाचा श्री परिपूर्णानन्द जी द्वारा सम्पादित 'प्रेमा' मे निकलती रहीं। इसी बीच लगभग १६ साल की अवस्था मे २८ जून १९३४ को आपका विवाह यशस्वी युवक पत्रकार, लेखक, और कवि श्री सुरेन्द्र बालुपुरी से हो गया। तब से आपने नियमित रूप से निरन्तर लिखना शुरू कर दिया। आपने इतनी छोटी सी उम्र में लगभग २० प्रौढ़ कहानियाँ, दर्जनों लेख, और अनेक कविताएँ लिखी है। आपकी कृतियो का सम्पूर्ण संग्रह शीघ्र ही निकल रहा है। आप गत अगस्त १९३८ मे युक्त प्रान्तीय कांग्रेस सरकार द्वारा बलिया मे आनरेरी मजिस्ट्रेट नियुक्त की गयी थीं। पर जब आपके चाचा माननीय श्री सम्पूर्णानन्द जी ने मंत्रिपद से तथा आपके पति श्री सुरेन्द्र बालुपुरी ने प्रान्तीय सरकार के पत्रकार-पद से इस्तीफा दे दिया, तब

आपने भी वृटिश सरकार की भारत-सम्बन्धी युद्ध-नीति से असन्तुष्ट होकर त्याग पत्र दे दिया।

आप इधर पिछले साल भर से बीमार थीं और उसी सिलसिले में आपका गत १२ मई १९४० को देहान्त हो गया। लखनऊ के सभी बड़े से।बड़े डाक्टरों ने आपकी चिकित्सा की किन्तु बेकार।

आपके दोनों बच्चे, कुमार प्रकाश बालूपुरी और कुमार अशोक बालूपुरी, बड़े ही होनहार हैं।

निम्नांकित कविताओं आपकी प्रतिभा की झलक देखिये:—

[१]

चित्रकार से—

जग-चित्रपटी के चित्रकार
तेरी लीला अपरम् अपार

नभमण्डल की नीलिमा सुघर
वसुधा की हरीतिमा मनहर
चाँदनी शुभ्र यह धवल-धवल
उषा का स्वर्ण दुकूल नवल

सब तेरी तूली के निहार
हे चित्रपटी के चित्रकार

सरसों का वासन्तिक सुहाग
मेरे अन्तर की अरुण आग
यह रुचिर इन्द्रधनु सतरंगा
यह झिल-मिल झिल-मिल स्वर्गङ्गा

श्रीमती सावित्री देवी

आप हिन्दी-साहित्य की कवयित्रियो में धीरे-धीरे एक विशेष स्थान प्राप्त कर रही है। आपकी रचनायें बड़ी सुन्दर और भाव-पूर्ण है। नवीन कविता-जगत में आप जिस प्रतिभा को लेकर आई हैं, आशा है, उस के द्वारा हिन्दी में स्थायी स्त्री-साहित्य की सृष्टि होगी। आपकी कवि प्रतिभा में बल है, सोचने, समझने, और भावों पर दृष्टि डालने की अच्छी शक्ति है। सर्वोच्च शिक्षा ने आपकी कवि-प्रतिभा को और भी अधिक विकसित कर दिया है। आपकी कल्पनायें बड़ी उच्च और व्यापक हैं। उनमें अनुभूति है, मौलिकता है। हृदय के अनुभूत भावों को व्यक्त करना आप भली प्रकार जानती हैं।

आपकी काव्य-कल्पना का आधार दार्शनिक जगत है। जीवन, सृष्टि, और प्रकृति के मध्य में जो 'सत्य' स्थित है, आप उसी का चित्रण करती हैं। आपकी दार्शनिक कल्पनायें मानव जगत के सन्मुख एक प्रकाश लाने का प्रयत्न करती हैं। उस
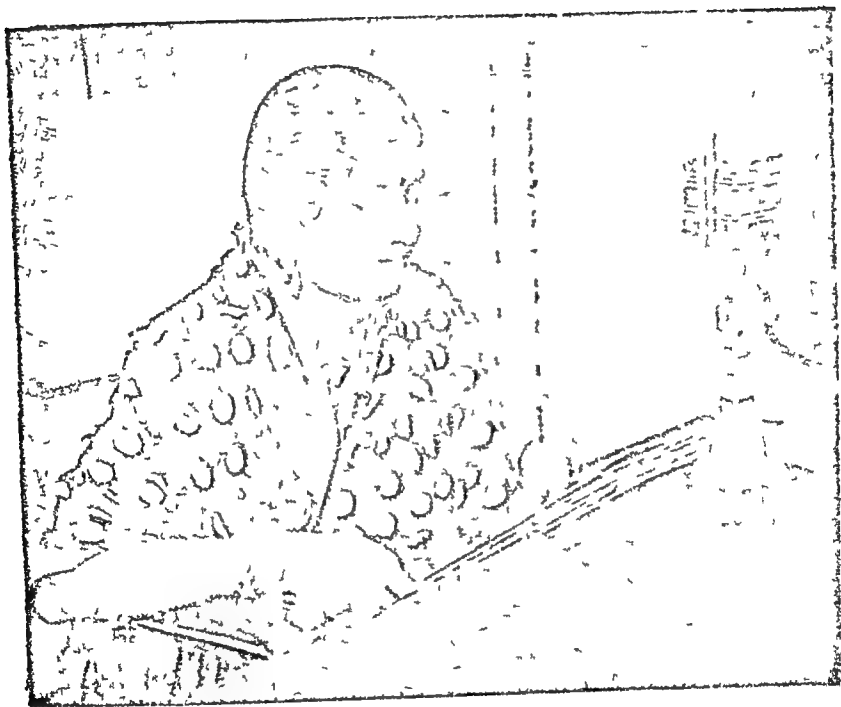
श्री मती सावित्री देवी

प्रकाश मे विश्व-बन्धुता की चमक है, मानव-प्रेम की झलक है, और है एक चिरसत्य की आभा। देखिये:—

मै नहीं खोजती वह शाला,
मद जहाँ लोग करते है क्रय,
मेरा मदिरालय तो अनन्त,
जिसमें सब रस होते हैं लय।

कितनी उच्च कोटि की सुन्दर पंक्तियाँ हैं। 'जिसमे सब रस होते हैं लय' इसके द्वारा कवियित्री ने अपने गंभीर ज्ञान का परिचय दिया है। इन पंक्तियों से यह प्रगट होता है, कि कवियित्री की दार्शनिक जगत के सूक्ष्म तत्वों तक पहुँच है।

श्रीमती सावित्री देवी की दार्शनिक कल्पनायें उनकी अपनी कल्पनायें हैं। उनमें नवीनता है, मौलिकता है। इसके साथ ही साथ उन्होंने अपनी निगूढतम कल्पनाओं का बड़ी ही सरलता और बड़ी ही स्वाभाविकता के साथ चित्रण किया है। उनका कल्पनायें निगूढ होने पर भी बड़ी ही सरलता के साथ हृदय को स्पर्श करती हैं। उनमें ओज और माधुर्य की अधिक मात्रा भी विद्यमान हैं।

श्रीमती सावित्री देवी हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि लेखक, और सुधा के यशस्वी सम्पादक पंडित दुलारेलाल जी भार्गव की धर्म पत्नी है। श्रीमती जी बड़े ही उच्च विचार की सुशिक्षित महिला हैं। आप के विचारो में नवीनता की क्रान्ति है, उच्च और आदर्श भावनाओं की झलक है। आपने अँगरेजी में एम०

पर प्रेम मय में लीन हो,
मम मूल्य बढ़ जाना घना।
प्रभु-प्रेम-पारावार पर
निज प्रेम सारा वार कर,
अति साध से बन साधिका,
की दीप माला साजना।
क्रमशः रुकी नीराजना,
मन की मिटी मम मूर्च्छना
तज्ज्योति ने प्राणाभ का
पूरा किया जब बाँधना।
एकात्मता तब हो गई,
किसकी करूं नीराजना ?
प्रभु-प्रेम-प्राणित प्राण तो,
गति-हीन भूले नाचना।

[२]

सूनी कुटी

सूनी-सी पर्ण-कुटी है,
सूनी है रहने वाली,
वेदना समझता था जो,
वह किधर गया प्रिय माली ?
निष्ठुर मम आशा-मग में,
छाया है निपट अँधेरा,

है ज्ञात नहीं, कब मुझको,
सत्संग मिलेगा तेरा !
नैराश्य-निशा-घड़ियों का,
क्या अब अवसान न होगा ?
कुल तम मय जीवन-वन में,
क्या प्रेम-विहान न होगा ?
सुकुमार कुसुम-सा जीवन,
लेकर जगती में आई,
अपने स्वर्णिम स्वप्नों की,
दुनिया थी अलग बसाई।
पर बसते उजड़ रही है,
यों बस्ती अरमानों की,
है ध्वनित चतुर्दिक पीड़ा,
अवसाद-भरे प्राणों की।
इस विरह-तप्त जीवन से,
तन-तरु यों मत झुलसाओ,
देकर दर्शन-रस शीतल,
कुसुमित अब इसे बनाओ।
प्यारा वसन्त छाया है,
प्रत्येक तरुण डाली पर,
सखि, स्नेह-लता सिंचन को,
आया न इधर माली, पर।

होमवती देवी

हिन्दी-साहित्य की कवियित्रियों में होमवती जी का विशेष स्थान है। आप की रचनाओं मे स्थायित्व है, साहित्य को प्राण देने की क्षमता है। आपकी रचनायें आपके नारी हृदय की अभिव्यक्ति हैं। उसमे आपका एक अपना पन है, अपनी विशेषता है। आपके हृदय-स्थित कवि ने आपके जीवन में जो कुछ देखा है, उसीं को संगीत का स्वरूप प्रदान किया है। उस संगीत में एक व्यापकता है। वह कवियित्री के हृदय से निकल कर समाज और राष्ट्र ही तक सीमित नहीं रह जाता, दूर और सुदूर वासी मानव-हृदय को भी स्पर्श करने की उसमें क्षमता है। होमवती जी ने अपने जीवन की अनुभूति मे जगत के मानव जीवन को देखा है, या यों कहना चाहिये कि उनकी अनुभूति इतनी अकृत्रिम और इतनी स्वच्छ है, कि उस पर मानव जीवन का प्रतिबिम्ब पड़ता है।

होमवती जी की रचनाओं पर कुछ लिखने के पूर्व उनके जीवन पर कुछ प्रकाश डाल देना अत्यन्त आवश्यक है। इसका

कारण यह है, कि होमवती जी की कविता की अभिव्यक्ति उनके जीवन की अभिव्यक्ति है। उनकी रचनाओं पर उनके जीवन का प्रतिबिम्ब है, उनके जीवन की छाया है। एक प्रकार से उनका जीवन ही कवित्त्व मय है। उन्होंने नश्वर-जगत में वेदना, आघात, और नियति की संहार-लीला के अतिरिक्त और कुछ देखा ही नहीं। वे कविता-जगत में एक तपस्विनी की भांति हैं। तपस्विनी की भाँति इसलिये हैं, कि वेदना और पीड़ा की अग्नि मे जला हुआ उनका जीवन जगत के कल्याण के लिये उसके सामने एक चिर सत्य रख रहा है। उनके निष्कलंक और पवित्र गीत, मानव हृदय को उस प्रकाश का मार्ग दिखाते हैं, जो अन्धकार की ओट में देदीप्यमान है।

होमवती जी की रचनायें पीड़ा के समुद्र मे लहरों की भाँति उछलती हुई दिखाई देती हैं। उनके हृदय मे एक टीस है, एक वेदना है। यह टीस और वेदना उनकी अपनी है, किन्तु जब वह उनके हृदय से निकलती है, तब समस्त जगत की वस्तु बन जाती है। उनकी वेदना में पवित्रता है, निष्कलंक भावों की छाया है। उनकी वेदना ऐसी है, जिसका जगत में कोई उपचार नहीं। दिन के पश्चात् रात, और रात के पश्चात् दिन होता है। इसी प्रकार दुख, सुख, और उत्थान पतन का भी क्रम है। किन्तु कवियित्री की वेदना नियति के इस क्रम को तोड़ कर आगे निकल गई है। कवियित्री नियति के इस क्रम को जानती है, किन्तु साथ ही उसे यह भी ज्ञान है, कि—

सुख के सँग दुख, दुख के सँग सुख,
सुना यही क्रम जग का है।
किन्तु हमारी दुख-गाथा में,
सुख का कुछ आधार नहीं।

कवियित्री की वेदना आशा के आधार से रहित है। उसकी आँखों के सामने कोई सम्बल नहीं, कोई प्रकाश नहीं। वह निराशा के सागर में निमग्न है। समस्त जगत उसे अंधकार-मय दिखाई देता है। जगत के एक-एक शब्द, जगत की एक-एक गति, उसके हृदय में काँटों के समान चुभती है। वह जगत में अपने निराश और दुखी जीवन ही तक रहना चाहती है, और उस ओर बढ़ना चाहती है, जहाँ सत्य है, जहाँ प्रकाश है। किन्तु जगत उसकी प्रगति मे बाधा उपस्थित करता है। कवियित्री ने जगत की उस बाधा और अपनी अवस्था का चित्रण निम्नांकित पंक्तियों में कितनी सुन्दरता के साथ किया है:—

इस थके से पथिक, को, मत छेड़ तू ओ जग दिवाने !
जा रहा वह राह अपनी, दर्द कुछ दिल का भुलाने !

+ + +

याद मत उसको दिला, भूले हुये उसके तराने।
मौन रहने दे नहीं, लग जायगा आँसू बहाने।
विश्व के वह भास सहकर, जा रहा है ये ठिकाने।
कर्म की कोरी कहानी, क्या पता किसको सुनाने !

किन्तु जगत क्यों मानने लगा? दुखियों को सताना, पीड़ितों को उनके अतीत की याद दिलाना तो जगत का काम है। जगत अपनी इस अमानवी लीला में सुख, सन्तोष, और उल्लास का अनुभव करता है। कवियित्री का सरल, निष्कलंक और विशाल हृदय जगत की इस अमानवी लीला से अत्यन्त पीड़ित हो उठा है। वह जगत से दूर, बहुत दूर चली जाना चाहती है। कहाँ जाना चाहती है, यह कवियित्री ही के सुन्दर और सरस शब्दों में सुनियेः—

चल मन! ऐसे देश चलें।
जहाँ न अपना अपना कह कर, जग के लोग छलें॥
चल मन! ऐसे देश चलें।
जहाँ न उर के दुखते छाले, जी चाहे कोई मल डाले।
जहाँ न पागल प्यार हृदय का, सिर धुन हाथ मले॥
चल मन! ऐसे देश चलें।
जहाँ न चिन्ता नागिन डसती, जहाँ न पीड़ा पापिन बसती।
जहाँ न जग की नियम काया, पी पी रक्त पले॥
चल मन! ऐसे देश चलें।

कितनी सुन्दर और स्वाभाविक पंक्तियाँ हैं। ऐसा ज्ञात होता है, मानों कवियित्री ने वास्तव में अधिक पीड़ित होकर इन पंक्तियो की रचना की है। इन पंक्तियों में कवियित्री ने जिस लोक की ओर संकेत किया है, वह सुदूर और पहुँच के बाहर होने पर भी कवियित्री की सरलता और स्वाभाविकता

के कारण अधिक सन्निकट-सा आ गया है। किन्तु फिर भी कवियित्री अपनी अनुभव की शक्ति से यह कह रही है, कि उस अपूर्व लोक में प्रत्येक व्यक्ति नहीं पहुँच सकता। उस लोक में, जीवन के उस पार, जहाँ सुख ही सुख है, जाने के लिये मन में सुरति की सुस्थिरता होनी चाहिये, और होनी चाहिये वास्तविक पीड़ा। क्यों? यह कवियित्री ही के शब्दों में सुनिये :—

सखे! ऐसा चंचल मन लिये भला, कैसे जाओगे पार?
घोर-तम, अगम सिन्धु की धार, जीर्ण नौका, टूटी पतवार।

सुरति यदि सुस्थिर होगी नहीं,
कहीं टकरा जायेगी नाव!
उठाना दूभर होगा मित्र!
बिखर-जायेंगे संचित-भाव।

पाठक आप देखें, होमवती देवी की रचनाओं में भावों की कितनी व्यापकता है! व्यापक भावों का सरलता के साथ चित्रण करना कवियित्री की एक अपनी वस्तु है। कवियित्री की अनुभूति बहुत ही सुन्दर, बहुत ही पवित्र और बहुत ही स्वाभाविक है। उसकी वेदना जगत की वेदना होने पर भी दार्शनिक वेदना है। वह अपनी वेदना के महायान पर चढ़ कर तीव्रतर गति से 'सत्यं शिवम् सुन्दरम्' की ओर अग्रसर होती हुई दिखाई दे रही है। उसकी एक-एक पंक्ति में

अमिट जीवन का सुन्दर सन्देश है। ऐसा सन्देश है, जो प्राणों को बजा देता है, मन को विस्मृत कर देता है।

होमवती जी का जन्म मेरठ के विख्यात वंश पत्थर वालों के यहाँ १९०६ ई० में हुआ था। जब आप छोटी-सी थीं, तभी आपके माता-पिता का देहावसान हो गया। आपके शैशव जीवन को जो आघात लगा, वह भीतर ही भीतर मस-मसा कर रह गया। किन्तु आपके हृदय में जो प्रकृत कवि था, उसने इन घटनाओं से संसार की अनित्यता को देखा। वयस्क होने पर आपका विवाह हुआ। आपके पीड़ित जीवन ने पति के रूप में सुख के आलोक को देखा। किन्तु नियति ने उस आलोक को भी छिपा लिया। होमवती जी का कवि इस असह्य पीड़ा से चिल्ला उठा। इसी पीड़ा का सार तो उनकी कविताओं में है, जिसमे उन्होंने अपने हृदय को ढाला है।

होमवती जी सुशिक्षित, विचार शील, और उदार-हृदय महिला हैं। आपके विचार बड़े ऊंचे और आदर्श हैं। इस समय आपके परिवार में आप और आपका एक मात्र पुत्र है। आप सफल लेखिका और ऊँचे दर्जे की कवियित्री होने के साथ ही साथ सुन्दर कहानी-लेखिका भी हैं। कविताओं ही की भाँति आपकी कहानियाँ भी हृदय-स्पर्शी और उच्च कोटि की होती हैं। आपकी 'उद्गार'. 'निसर्ग' और 'अर्घ' नाम की तीन पुस्तकें भी प्रकाशित हुई हैं।

तप्त अग्नि मे तिल-तिल जल कर, है प्रेम-प्रदीप जलाया ॥
मैंने नव संसार बसाया।

लेकर चाह आह चुन चुन कर,
निशि वासर क्षण क्षण घुल घुल कर,
अरे ! व्यथा को प्राणों में भर, देख सकी हूं सुख की छाया ॥
मैंने नव संसार बनाया।

[४]

उपेक्षा

क्या हमारा स्वप्न-सुख भी,
क्षार बन कर ही रहेगा ?
विश्व के अनुताप से जल,
क्षार बन कर ही रहेगा।
है कठिन-विस्तीर्ण-पथ, अस्तित्व ही क्या है हमारा ?
पर जगत के कुलिश उर पर, भार बन कर भी रहेगा !

विश्व जब अपना नहीं, तो,
क्या हमें उसकी पड़ी है ?
प्यार प्राणों का सखे !
आधार बन कर ही रहेगा।
दूर चल कर क्षितिज रेखा पर, नई दुनिया बसा लें।
प्राण अपना परिधि में, संसार बन कर ही रहेगा ॥

शोक क्रन्दन के सिवा,
संसार से क्या मिल सकेगा ?

विश्व का उपकार भी,

अपकार बन कर ही रहेगा ?

[५]

आज मेरी

आज मेरी बेबसी पर, विश्व सब इठला रहा है।
आंसुओं पर हँस रहा, आहों से जी बहला रहा है॥
क्या कहूं, अपनी व्यथा, कह कर भला किसको सुनाऊँ।
मर्म-क्षत गहरे हुये जाते, इन्हे क्यों कर छिपाऊँ॥
दर्द भी अपना दवा बनता किसी की जा रहा है।
आज मेरी..।

सिसकती है रात मेरी, अश्रु चुनता प्रान मेरा।
नित्य के संघर्ष मे पड़, कर रहा अवसाद फेरा।
स्नेह-पूरित दीप भी, अब टिम टिमाता जा रहा है।
आज मेरी...।

आश थी जिनसे अधिक, वह आँख सब दिखला रहे हैं।
झन झना कर शृंखलाओं को, हृदय दहला रहे है॥
प्यार प्राणों का विवश अब, भार होता जा रहा है।
आज मेरी...।

'ऊषा' देवी जी की रचनाओं के सम्बन्ध में आचार्य शुक्ल जी ने जो सम्मति प्रगट की है, वास्तव में वह अधिक मूल्यवान है। निसन्देह अधिक जोर के साथ यह कहा जा सकता है, कि 'ऊषा' देवी की रचनाये सचमुच जीवन-रस के छोटे-बड़े सोते है। जीवन में जो अनेक आघात-प्रतिघात होते हैं, 'ऊषा' जी के कवि-हृदय ने उन्हीं को ग्रहण किया है, और अपनी कवि-प्रतिभा से उन्हीं को संगीत का स्वरूप प्रदान किया है। यद्यपि 'ऊषा' जी की निर्झरिणी में जीवन के अनेक भाव कुसुम के रूप में बहते हुए दिखाई दे रहे हैं, किन्तु उनमें असीम प्रेम के भाव-सुमन अधिक हैं। उनकी प्रत्येक रचना में हृदय-स्पर्शी प्रेम है। इसी लिए उनकी रचनाओं में अधिक सरसता और अधिक हृदय-स्पर्शिता भी है।

प्रेम की आपकी अनुभूति बड़ी सुन्दर और सजीव है। आपकी मनोहर और काव्य-गुणों से अलंकृत कल्पनाओं ने प्रेम को चित्रण करते हुये प्रेम को सजीवता को स्वरूप प्रदान कर दिया है। निम्नांकित पंक्तियों में देखिये, कवियित्री की प्रेमानुभूति और उसकी काव्य-कल्पना का कितना सुन्दर विकास हुआ है:—

किस गर्व मयी बाला के.
सेंदुर का सुन्दर टीका।
फैला उद्गार सिमट कर,
किस भावमयी के जी का।

\+ \+ \+

नीरव रजनी में जागी,
पथ-तकते जीवन-धन का,
इससे नयनों में लाली,
कुछ भेद बताओ मन का।

ऊपरोक्त पंक्तियों मे कवियित्री ने ऊषा के ऊपर जो प्रेम-पूर्ण कल्पना की है, उससे कवियित्री की कवि-प्रतिभा और उसकी स्वभाविक-अनुभूति का सुन्दर परिचय मिलता है। कवियित्री में विभिन्न कल्पनाओं को जगाने की अच्छी शक्ति है। वह जिसका चित्रण करना चाहती है, उसे विभिन्न कल्पनाओं से सजा कर सजीव और प्राणमय बनाना भी जानती है।

'ऊषा' देवी के प्रेम मे विभिन्न कल्पनाओं के शृङ्गार के साथ ही साथ भावों की व्यापकता और विशदता भी है। वे अपनी सजीव प्रेमानुभूति और उसकी वास्तविक प्रेरणा के साथ मानव जगत में विचरण करती हुई दिखाई देती हैं। वे जगत को ही प्रेम मय देखती हैं। उनकी सृष्टि का आधार प्रेम है। वे प्रेम से ही जगत पर विजय प्राप्त करना चाहती हैं, और जगत में प्रेम ही को 'चिर सत्य' के रूप में देखती हैं। निम्नांकित पंक्तियों में इसकी परीक्षा कीजिये:—

कहते हैं ध्यानी, ज्ञानी, जग-
है माया-दुख मूल सखी !

किन्तु इसी जग में खिलते हैं,
सुखद प्रेम के फूल सखी !

\+ + +

इसी प्रेम पर विश्व थमा है,
प्रेम सृष्टि का सार सखी !
बिना प्रेम का जीवन जग में,
बन जाता है भार सखी !

'ऊषा' देवी में दार्शनिकता भी है। अध्यात्मिक भावों का विकास उनकी 'मैं' शीर्षक कविता में पूर्ण रूप से परिलक्षित होता है। इस कविता से यह प्रगट होता है, कि कवियित्री का ध्यान सत्यं शिवम् सुन्दर की ओर भी है और वह अपने हृदय में उसका अनुभव भी करती है। निम्नांकित पंक्तियों को देखिये, वे अध्यात्मवाद के किस गंभीर सागर की ओर मन को आकृष्ट कर रही है :—

जो कभी न होता खाली,
वह कविता का प्याला हूं।

\+ + +

मैं एक ज्योति ऐसी हूँ,
जो बुझ कर हूं जल जाती।

कवियित्री के नारी हृदय की अनुभूति कहीं कहीं इतनी सुन्दर और इतनी उच्च कोटि की है, कि मन मुग्ध हो जाता है। कवियित्री अपनी इस स्वानुभूति को प्रगट करके साहित्य

में अमर बन गई है। एक भारतीय नारी अपने भाल पर लगे हुये सिन्दूर-विन्दु को क्या समझती है, यह कवियित्री के नारी-हृदय-कवि ही के स्वर मे सुनिये:-

अनुराग-राग प्रियतम का,
मेरे सुहाग की लाली।
सिन्दूर-विन्दु बन झलकी,
मेरे मस्तक पर आली।

\+ \+ \+

सम्मुख इसके झूठा है,
जग का सब रत्न खजाना।
अनमोल मोल इसका है,
बस नारि हृदय ने जाना।

कितनी सुन्दर, स्वाभाविक, और सरल पंक्तियाँ है। कवियित्री की उक्त पंक्तियों में, कवियित्री के हृदय का स्वर नहीं, समस्त भारत की स्त्रियों का स्वर है। कवियित्री यहाँ स्त्री-जगत का प्रतिनिधित्व करती हुई दिखाई देती है। उसकी अनुभूति कितनी सच्ची, कितनी अकृत्रिम, और कितनी सर्व व्यापिनी है। कवियित्री इस दृष्टि से हिन्दी-साहित्य के गर्व की वस्तु है।

'ऊषा' जी हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि स्वर्गीय मन्नन द्विवेदी गजपुरी की छोटी बहन हैं। आपके पति देव पं० उमाशंकर दीक्षित एम० ए० यल० टी० कानपुर के सुप्रतिष्ठित नागरिक और हिन्दी-साहित्य के अच्छे विद्वान हैं। आप शिक्षा के विशेषज्ञ हैं।

आपके सहयोग से ऊषा जी की कवित्त्व-शक्ति का दिनों दिन अधिक विकास हो रहा है। ऊषा जी ने अपना परिचय स्वयं निम्नांकित शब्दों में दिया है:—

ऊषा नाम मेरा है, विदित कवि-मण्डली में,
राप्ती नदी के तट खेल के पली हूँ मैं।
पाया जन्म मैंने काव्य कुञ्ज कुल में है;
मातादीन कवि-हरिदास की लली हूँ मैं।
राष्ट्र भाषा-कविता कला के मार्त्तण्ड रूप,
मन्नन द्विवेदी जी की भगिनी भली हूँ मैं।
काव्य-कुसुमों के मधुपान करने को नित,
रहती बनी ही मधु-लोलुप अली हूँ मैं।

आपकी कविताओं का एक संग्रह अभी 'निर्झरिणी' के रूप में प्रकाशित हुआ है। निम्नांकित कविताओं में आपकी सुन्दर कवि-प्रतिभा देखिये:—

[१]

ऊषा

आरक्त छटा छिटकायी,
किसने प्राची में आकर?
रँग दिया क्षितिज का अंचल,
किसने रोली बिखरा कर!
इस स्वर्ण किरण में फैली,
किस सुख-सुहाग की लाली?

माणिक-मदिरा से भर दी,
किसने भावों की प्याली ?

किस गर्व मयी बाला के,
सेंदुर का सुन्दर टीका ?
फैला उद्गार सिमट कर,
किस भाव मयी के जी का !

या करता प्राण चितेरा,
अंकित प्राची के पट पर—
तारों की करुण कहानी,
सुन्दर रक्तिम रँग भर कर।

है विश्व-वाटिका के किस,
कमनीय कुसुम की लाली !
नित घोल अरुणिमा जिसको,
सींचा करता बनमाली।

रजनी के उर-अन्तर में,
जो विरह-व्यथा हिमकर की;
वह अरुण रूप धर आई,
ज्वाला-सी बन अम्बर की।

फट गया हृदय रजनी का,
बह चली रुधिर की धारा।
क्या प्रिय वियोग ने उसको,
है तीव्र दुधारा मारा !

नहीं काठ से कठिन कमल दल,
पर है उसका प्यार सखी ।
कहते हैं ध्यानी, ज्ञानी जग–
है माया, दुख-मूल सखी ।
किन्तु इसी जग मे खिलते है,
सुखद प्रेम के फूल सखी ।
अग, जग, जड़, चेतन सब ही मे,
व्याप्त हो रहा प्रेम सखी !
किसके नयन नहीं भर आते,
लख चातक का नेम सखी !
इसी प्रेम पर विश्व थमा है,
प्रेम-सृष्टि का सार सखी !
बिना प्रेम का जीवन जग में,
बन जाता है भार सखी !
प्रेम-पन्थ पर मर मिटने में,
भी है कितना स्वाद सखी !
जिस सनेह में दाह, आह वह,
पापों का उन्माद सखी ।
कहते हैं यह जग बन्धन है,
अरु है कारागार सखी ।
किन्तु इसी को स्वर्ग बनाता,
है प्रियतम का प्यार सखी !

[२]

अनुराग-राग मे गूँथी,
मै स्नेह-सुमन-माला हूं ?
जो कभी न होता खाली,
वह कविता का प्याला हूं।

अविराम हेरती प्रिय का,-
पथ वह चकोर बाला हूँ;
पड़ता प्रेमी के उर में;
मैं वह कोमल छाला हूँ।

अविरल गति बहने वाली,
मैं नेह नदी गहरी हूँ,
पावन प्रिय, पद रज, धोने,
प्रियतम पथ पर ठहरी हूँ।

मैं एक ज्योति ऐसी हूं,
जो बुझकर हूँ जल जाती,
जीवन-सनेह जलता है,
लेकर प्राणों की बाती।

मैं एक रागिनी वह हूँ,
जिस को प्रेमी गाते है,
सुन जिसे मोह-निद्रा में,
सोते जन जग जाते हैं।

मैं एक सरस उपवन हूँ,
जिसमें वसन्त लहराता;
नित स्नेह-समीरण आ, आ,
सुख-सौरभ बरसा जाता।

मैं एक ललित लतिका हूँ,
इस जग रूपी उपवन की;
जो मगन लगन में अपनी,
हूं एक बूँद उस घन की।

जो नयन-नीर से भीगा,
वह विरहिन का अंचल हूं;
जिसमें न पाप की छाया,
शिशु का वह दृग चंचल हूँ।

हूं मधुर कूक कोयल की,
चकवी की मीठी पीड़ा,
हूँ शील सती नारी का,
हूं कुल-बाला की व्रीड़ा।

सुख का अथाह सागर हूँ,
हूँ एक लहर करुणा की;
दुख की सूखी सरिता हूं,
हूं विकल प्रेम की झाँकी।

[४]

सिन्दूर-विन्दु

अनुराग-राग प्रियतम का,
मेरे सुहाग की लाली ।
सिन्दूर-विन्दु बन झलकी,
मेरे मस्तक पर आली !

वह उर-प्रदेश प्रियतम का,
मैंने जब विजय किया था ।
अपने कर से प्रियतम ने,
मेरा अभिषेक किया था ।

दो हृदयों को मथ कर जो,
भावों का सार निकाला ।
यह रुधिर उसी का टीका,
मम मस्तक पर द डाला ।

प्रिय प्रेम रूप स्वाती जल,
मम उर सम्पुट मे जाकर ।
है हुआ प्रकट यह मोती,
मन मोहक रूप बना कर ।

मम हिय-सागर मन्थन कर,
प्रिय ने यह रत्न निकाला ।
उपहार प्रेम का कह कर,
फिर मुझको ही दे डाला ।

उर-कुंजलता की मेरी,
यह अरुण सुमन छवि वाला।
मकरन्द पान कर जिसका,
मम मन-मलिन्द मतवाला।

यह लगी भाल पर मेरे,
विधि कर की अरुण निशानी।
यह लिखी मूक भाषा में-
मेरी सौभाग्य कहानी।

यह निधि मेरे जीवन की,
शृङ्गार-सार यह मेरा।
यह प्राण बना प्राणों का
जीवनाधार यह मेरा।

सीमित है इसी परिधि में,
जीवन की सारी आशा में।
इसके नन्हें से उर में,
सोती कितनी अभिलाषा।

सम्मुख इसके झूठा है,
जग का सब रत्न खजाना।
अनमोल मोल इसका है,
बस, नारि हृदय ने जाना॥

श्रीमती शकुन्तला देवी खरे

हिन्दी-साहित्य-जगत मे इस समय जो कवियित्रियाँ अपने उज्वल भविष्य को लेकर आगे बढ़ रही हैं, उनमे एक शकुन्तला देवी खरे हैं। आप एक भावुक और सुप्रसिद्ध कवि की पत्नी है। आपकी कविताओ मे विकास के गुण अधिक परिमाण में विद्यमान तो हैं ही, आपको अनुकूल जीवन भी प्राप्त है। कहना न होगा, कि आपकी रचनाओं का तीव्रतर विकास हो रहा है। अभी आपने थोड़े ही दिनों से काव्य-जगत में प्रवेश किया है, तथापि आपकी रचनाओं में अधिक प्रौढ़ता अधिक स्पष्टता और अधिक हृदय-स्पर्शिता है। आपकी भाषा बहुत ही परिमार्जित, सुन्दर, और भावों को ठीक-ठीक व्यक्त करने वाली है। आपकी सुन्दर और भाव-पूर्ण रचनाओं को देख कर हमें यह कहते हुये अपार हर्ष हो रहा है, कि कुछ ही दिनों में हम आपको हिन्दी की कवियित्रियों में एक विशेष स्थान प्राप्त करते हुये देखेंगे।

'खरे' जी के कवि में सर्वतोमुखी प्रतिभा है। वह सुकुमार

है, सरस है। उसका हृदय विशाल और महत्वाकांक्षी है। उसकी दृष्टि बहुत पैनी और सूक्ष्म है। वह जगत में जीवन के तत्त्व को खोजता है। संसार उसे एक रहस्यमय दिखाइ देता है और वह चकित होकर कह उठता है:—

प्रति पल सुख-दुख का अभिनय,
क्यों जग जीवन में होता ?
सुन्दर सुन्दर आँखों मे,
क्यों आँसू-सागर-सोता ?
फूलों ने क्यों सीखा है,
खिल-खिल कर मुरझाजाना ?
सीखा है क्यों मेघो ने,
अपना सर्वस्व मिटाना ?

दार्शनिक कवि के लिये यह सहज स्वाभाविक बात है, कि वह संसार के रहस्यों को देख कर उस पर आश्चर्य प्रगट करे। दार्शनिक कवि जगत और जीवन के रहस्यों को पहले भेदने का प्रयत्न करता है, किन्तु जब नहीं भेद पाता, तब अपने हृदय के उद्गारों को आश्चर्य के रूप में प्रगट कर देता है। संसार के सभी बड़े-बड़े दार्शनिक कवियों मे आश्चर्य की यह भावना पाई जाती है। वास्तविक कवि होने के कारण खरे जी ने भी अपनी उस भावना को व्यक्त किया है, जिसमें अपने आप दार्शनिकता प्रस्फुटित हो उठी है। 'खरे जी' जगत और जीवन के तत्त्वों पर आश्चर्य ही प्रगट करके नहीं रह जातीं।

उनका दार्शनिक कवि-हृदय उन्हें और आगे जाने के लिये विवश करता है। वे जब दार्शनिक जगत में और आगे बढ़ती हैं, तब उन्हे जीवन और जगत के बीच में एक सुन्दर 'सत्य' दिखाई देता है। कवियित्री अपने हृदय की दार्शनिक आँखों से उसकी पूर्णता को देख लेती है, और फिर अपनी अपूर्णता को उसमें मिला देने के लिये ललक उठती है। कवियित्री ही के स्वर मे उसकी ललक को सुनिये:—

मै तुममें लय हो जाऊँ!
तुममे मिलकर मैं प्रियतम अपना सौन्दर्य बढ़ाऊँ!

सुख मुझसे आज मिला है,
यौवन का फूल खिला है,

चरणो मे उसे चढ़ा कर मंगल मै सदा मनाऊँ,
अपना अस्तित्व मिटाकर केवल मैं तुमको पाऊँ!

कितनी उच्च कोटि की कल्पना है। कवियित्री की कल्पना को देख कर हम यह कह सकते हैं, कि वह कविता के प्रारंभिक काल को छोड़ कर बहुत आगे निकल गई है। कवियित्री की उक्त पंक्तियों मे दार्शनिकता बड़े ही सूक्ष्म रूप में प्रस्फुटित हुई है। कवि के प्रारंभिक काल मे दार्शनिक भावों की ऐसी गहरी सूक्ष्मता बहुत कम पाई जाती है। किन्तु यहीं तक समाप्त नहीं, कवियित्री के दार्शनिक भावों का आगे और भी अधिक विकास हुआ है। देखिये:—

है चाह नहीं जीवन की, वैभव पाकर इठलाऊँ !
अपनी मधु मुसुकानों से जग को न लुभाने जाऊँ !

+ + +

है चाह यही जीवन की, तिल-तिल कर हृदय जलाऊँ,
प्रियतम के पावन पथ की पथ-रज बन मैं खोजाऊँ ।

किन्तु क्यों ? दार्शनिक कवियित्री अपने उस 'पूर्ण' प्रियतम पर, जो 'सत्य है' 'सुन्दर' है, क्यों इतनी रीझी हुई है ? वह क्यों उसकी प्राप्ति के लिये 'खोजाने' के लिये तैयार है ? सुनिये:—

तुममे चिर आनन्द छिपा है,
तुममें झूम रहा उल्लास ।
मेरे मन-मन्दिर में सुख से,
बसे रहो मेरे भगवान ।

कवियित्री को अपनी लघुता, और अपने प्रियतम की महानता का भी ज्ञान है। वह भली भाँति जानती है, कि जीवन प्रकृति और सृष्टि के बीच मे वही एक महान है, वही एक सत्य है, वही एक पूर्ण है। कवियित्री ने अपनी इस विशद भावना को जिस प्रकार व्यक्त किया है, वह दर्शनीय है:—

तुम पूर्ण चन्द्र, मैं एक किरण,
तुम महा सिन्धु मैं चपल लहर,
तुम विश्व वेणु, मैं मादक स्वर,
तुम चिर सुन्दर, मै छवि नश्वर ।

'खरे' जी की इन पंक्तियों मे एक दार्शनिक गूढ़ तत्त्व छिपा हुआ है। 'गूढ तत्त्व' छिपा होने पर भी पंक्तियाँ बहुत ही सरल और स्पष्ट हैं। खरे जी की दार्शनिक कल्पनाओं की यह एक प्रधान विशेषता है, कि वे बहुत सुलझी हुई और स्पष्ट हैं।

'खरे जी' की 'नारी गान' शीर्षक कविता में उनके नारी हृदय की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई हैं। 'नारी जीवन' का ऐसा सजीव और वास्तविक चित्रण आज तक मुझे कहीं देखने को को नहीं मिला। देखिये:--

हम विश्व प्रिया, हम रूप राशि,
कितने ही हृदयों की रानी,

+ + +

हम नवल वधू हम जग-माता,
हम मुग्ध सुन्दरी सुकुमारी।

+ + +

हम अटल भक्ति, हम मधुर मिलन,
पावनता का आगार हमीं।
हम महा शक्ति, हम महा क्रान्ति,
रण चण्डी की तलवार हमीं।

कितनी सुन्दर और कितनी उच्च कोटि की पंक्तियां हैं। इनमें 'नारी जीवन' का मूल रहस्य है। और खरे जी उस रहस्य तक पहुंची हुई जान पड़ती हैं। 'खरे' जी की ये सजीव और स्वाभाविक पंक्तियाँ साहित्य-जगत में उन्हें अमरता प्रदान करेंगी।

अन्तर का घाव हरा है,
नयनों में नीर भरा है,
नित दर्शन करूँ तुम्हारे जीवन की जलन मिटाऊँ।
चिर शान्ति मधुर सुख पाने,
प्राणों को अमर बनाने—
अपना अस्तित्त्व मिटाकर, केवल मैं तुमको पाऊँ।

[३]

गीत

जब से तुम जीवन में आये!
कितने स्वर्ग और नन्दन बन तुम में हँसते पाये!
अब सोने के दिन होते हैं, और चाँदी की रातें,
पल से प्रहर बीत जाते हैं, करते मधुमय बातें,
तुम तो एक नया जग लेकर इन प्राणों में छाये।
पवन-सुरभि लेकर आती है, कलियाँ ले मुसुकाने,
कोयल की वाणी वंशी भी, गाती सुख मय गाने
सुखद बसन्त चला आता है, प्रियतम! बिना बुलाये।
वह अनन्त छवि पीकर ही तो, भूले जग दृग-तारे,
मैं अपना पन भूल चुकी हूं, तुमको पाकर प्यारे!
मरुथल-से प्यासे जीवन में तुम ही सावन लाये।
जब से तुम जीवन में आये!

[४]

संहार-विजय

आज मृत्यु का खेल अनोखा,
वीरों ने हँस खेला।
दिन कर भी तो रक्त वर्ण है,
आई संध्या बेला ॥
देश-प्रेम के मतवाले हैं,
चिर निद्रा में सोये।
हँसने वाला हँसले उन पर,
रोने वाला रोये।
जननी, आँसू-मोती का,
तू क्यों कर हार पिरोये ?
अरी, खून का दाग़ बावली,
क्या आँसू-जल धोवे ?

———

श्रीमती हीरादेवी चतुर्वेदी

श्रीमती हीरा देवी की रचनाओं से हिन्दी-जगत अधिक सुपरिचित है। आपकी सुन्दर रचनायें हिन्दी की सभी मासिक पत्र-पत्रिकाओं में बराबर प्रकाशित होती रहती हैं। आपकी कुछ रचनायें बड़ी सुन्दर हैं, और उनमें कवित्त्व का अच्छा विकास हुआ है। आप मे भावुकता है, और अनुभूति भी है। आप अपने अनुभूत भावों को शब्दों के द्वारा व्यक्त कर देना भली भाँति जानती है। प्रमाण के लिये निम्नांकित पंक्तियाँ देखिये:—

मूक हृदय से निकले हैं सखि,
छन्द मनोहर ये दो चार।
मेरी दुखद निराशा का है,
निहित इन्हीं में पारावार।

आप में उच्चादर्श की झलक भी है। आपके उच्चादर्श में राष्ट्र की कल्याण भावना है। राष्ट्र-जननी की पीड़ित पुकारने आप की आत्मा को दुख से अधिक विह्वल बना दिया है।

आपकी वह दुख-विह्वलता निम्नांकित पंक्तियों में भली प्रकार विकसित हो सकी है:—

सुरभित पुष्पों के पंखों पर,
षट पद बन कर मतवाली;
नहीं चाहती रहूं डोलती,
डाली डाली पर आली!
नव बसन्त मे किसलय बनकर,
मारुत-भूला मनमाना—
भूल-भूल कर नहीं चाहती,
वैभव पर ही इतराना!
\+ \+ \+
चाहूँ माँ की हित-वेदी में
हँसते हँसते जल जाना!
कोमल पुष्पों को ठुकरा कर,
काँटों पर ही सो जाना!

आपकी कविता का कोई एक विशेष आधार नहीं है। आप की रचनायें अनेक प्रकार के भावों के साँचे में ढली हुई हैं। आपके हृदय मे जो भाव उठे हैं, उन्हीं को आपने अपनी रचनाओं का आधार बनाया है। यही कारण है, कि आपकी रचनाओं में हृदय-स्पर्शिता के गुण भी हैं। आपकी भाषा परि-मार्जित और भाव अधिक सुलझे हुये हैं।

श्रीमती हीरा देवी चतुर्वेदी मध्य प्रान्त के प्रसिद्ध साहित्य-

सेवी और सुकवि पं० दवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' की धर्म पत्नी हैं। आप अपने सुयोग्य पति के साथ छिंदवाड़ा में रहती हैं। सहृदय और सुकवि पति के सहयोग से आपकी रचनाओं का दिनों दिन तीव्रतर विकास हो रहा है। आप, पति-पत्नी, दोनों निरन्तर साहित्य-देवता की आराधना में सलग्न रहती हैं। आप की सुन्दर रचनाओं का 'नीलम' के नाम से एक संग्रह भी प्रकाशित हुआ है।

निम्नांकित कविताओं में आपका काव्य-चमत्कार देखिये:—

[१]

द्वार पर

शतदल-उपवन को अलि करता,
उन्मन गुंजन से गुंजार;
आई मैं भी गुंजित करने,
देव ! तुम्हारा हृदयागार।

चन्दन-चर्चित कुंकुम केशर,
सुमनों का ले मंजुल हार,
धूप-दीप सब साज सजाकर,
लाइ पूजा का सम्भार।

अभिलाषा, आशा के अंकुर,
हरित छिछलते-से सुकुमार।
सूख गये हा ! बन्द देखकर,
रत्न खचित मन्दिर के द्वार।

छोड़ अकिंचन अबला पर तुम,
उपल विपुल सम भारी भार,
देव ! व्यर्थ ही निष्ठुरता का,
दिखा रहे यह कटु व्यापार।

रहे मौन यदि इसी तरह प्रभु,
तब तो मेरा मन सुकुमार,
सह न सकेगा विकट व्यथा का,
ऐसा निष्ठुर वज्र प्रहार।

अमल कमल-सी सोती बाला,
स्वर्णिम आशा ले अम्लान,
बाट जोहती बाल-भानु का,
होगा कब मृदु स्वर्ण विहान।

देर हो रही देव ! खोल दो,
अब तो ये मन्दिर के द्वार,
आओ पूजा करूँ तुम्हारी,
मुग्ध हृदय से मैं साभार।

[२]

स्मृति

शेष है अब धुंधला ध्यान !
नील-व्योम में जब शशि सुन्दर,
क्रीड़ा करता था खिल-खिल कर,

सेवी और सुकवि पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' की धर्म पत्नी हैं। आप अपने सुयोग्य पति के साथ छिंदवाड़ा में रहती हैं। सहृदय और सुकवि पति के सहयोग से आपकी रचनाओं का दिनों दिन तीव्रतर विकास हो रहा है। आप, पति-पत्नी, दोनों निरन्तर साहित्य-देवता की आराधना में संलग्न रहती हैं। आप की सुन्दर रचनाओं का 'नीलम' के नाम से एक संग्रह भी प्रकाशित हुआ है।

निम्नांकित कविताओं में आपका काव्य-चमत्कार देखिये:—

[१]

द्वार पर

शतदल-उपवन को अलि करता,
उन्मन गुंजन से गुंजार;
आई मैं भी गुंजित करने,
देव! तुम्हारा हृदयागार।

चन्दन-चर्चित कुंकुम केशर,
सुमनों का ले मंजुल हार,
धूप-दीप सब साज सजाकर,
लाई पूजा का सम्भार।

अभिलाषा, आशा के अंकुर,
हरित छिछलते-से सुकुमार।
सूख गये हा! बन्द देखकर,
रत्न खचित मन्दिर के द्वार।

छोड़ अंकिचन अबला पर तुम,
चपल विपुल सम भारी भार,
देव ! व्यर्थ ही निष्ठुरता का,
दिखा रहे यह कटु व्यापार।

रहे मौन यदि इसी तरह प्रभु,
तब तो मेरा मन सुकुमार.
सह न सकेगा विकट व्यथा का,
ऐसा निष्ठुर वज्र प्रहार।

अमल कमल-सी सोती बाला,
स्वर्णिम आशा ले अम्लान,
बाट जोहती बाल-भानु का,
होगा कब मृदु स्वर्ण विहान।

देर हो रही देव ! खोल दो,
अब तो ये मन्दिर के द्वार,
आओ पूजा करूँ तुम्हारी,
मुग्ध हृदय से मैं साभार।

[२]

स्मृति

शेष है अब धुंधला ध्यान !
नील-व्योम में जब शशि सुन्दर.
क्रीड़ा करता था खिल-खिल कर,

प्रियतम आ तब हृदय-पार्श्व में,
प्रकट हुये छविमान । शेष है० ॥

कलित कुंज था वह अति सुन्दर,
लता विहँसती थी झुक-झुक कर,
वहीं कहीं सोते थे मधुकर,
उसो कुंज मे दो मुख पर थी,
मधुर मिलन मुसुकान । शेष है० ॥

मलय-वायु भी थिरक थिरक कर,
आती जाती थी रह-रह कर,
प्रियतम-मुख से तब अस्फुट स्वर,–
निकल रहा था प्रणय-पूर्ण पर,
भंग हुआ हा ध्यान । शेष है० ॥

[३]

उद्गार

राग की मादकता मे भूल,
अकल्पित कल्पित कर शृंगार ।
प्रलय के अधः पतन को भूल,
बहाती रहती हूँ उद्गार ।
हृदय में कितने ही अविकार,
पिघलते करते भंग सुशान्ति ।
मृदुल स्वप्नों मे तब साकार,
नाचती आशा, लाती भ्रान्ति ।

लालसा का उद्वेलित वेग,
चपल क्रीड़ाओं का अभिसार।
वासना की कल्लोल मनोज्ञ,
बनी है जीवन पारावार।
अमरता नश्वरता की गोद,
दिखाती बरबस सरस दुलार।
जगत का यही बना है मोद,
यही है कवियों के उद्गार।

[४]

प्रतीक्षा

नभ के नवल नील प्रांगण में,
कितने ही तारे आये।
झलक झलक रजनी अंचल से,
झाँक-झाँक कर मुसुकाये।
उड़-उड़ कहाँ-कहाँ से कितने,
पक्षी आये राह लगे।
कितने पथिक प्रवासी लौटे,
निज-निज गृह अनुराग पगे।
कोकिल कल-कूजन कितना ही,
सुन-सुन कर मैं भूल चुकी।
बन कर आशा, दुखद निराशा,
कितना हिय में हूल चुकी।

पलक पाँवड़े स्वागत में प्रिय,
      रच-रच कर नव मन भाये।
बिछा चुकी शीतल करने को,
      पथ मे आँसू ढुल काये।
प्रणयी ! किन्तु न लख पाई हूं,
      अब तक तेरी वह छाया,
जिसे देख कर एक बार तो,
      करती विस्मृत जग-माया।

कुमारी विद्या भार्गव

कुमारी विद्या भार्गव हिन्दी-साहित्य की उदीयमान कवि-यित्री है। आपकी सुन्दर और भाव-पूर्ण रचनायें हिन्दी की सभी सुप्रसिद्ध मासिक पत्रिकाओं मे प्रकाशित होती हैं। आपकी रचनाओं मे आपके कवि-जीवन का एक बहुत ही सुन्दर भविष्य छिपा हुआ है। आपके हृदय में जो कवि है, यदि उसके विकास-मार्ग में किसी प्रकार की वाधा न उपस्थित हुई, और उसे अनुकूल साधन प्राप्त होते रहे, तो कुछ ही दिनों मे हिन्दी-साहित्य मे उसका एक विशेष स्थान होगा।

इस समय आपकी कविता का शैशव काल है, तथापि आपकी रचनाये बड़ी ही सुन्दर और भाव-पूर्ण हैं। उनमे ओज है, माधुर्य है, सुकुमारता है। अनुभूति में स्वाभाविकता का अच्छा संमिश्रण है। वर्तमान काल के कुछ नये कवियों और नवीन कवियित्रियों की भाँति आप दुरूहता के जाल की ओर अग्रसर न होकर सरलता के साथ स्वाभाविकता ही की ओर अधिक बढ रही है। हृदय के अनुभूत भावो को ठीक-ठीक व्यक्त करने

की आप में पर्याप्त शक्ति है। वियोगिनी नायिका की हृदय-भावना का एक स्थान पर आपने बड़ा ही सुन्दर और स्वाभाविक चित्रण किया है। देखिये:—

अतिथि रूप में कभी मिलेंगे,
वे मेरे चिर प्रियतम।
यही सोच कर मैं सखि प्रतिक्षण,
पिरो रही हूँ मोती।

कुमारी विद्या में अनुभूति के साथ ही साथ भावों की विशालता भी है। आपकी कविता की वियोगिनी, और उसका प्रियतम, आत्मा और परमात्मा के रूप में है। आपकी प्रत्येक रचना मे इसी भावना का आभास है। इसी भावना के आधार पर विभिन्न और नूतन कल्पनाओं के द्वारा कहीं आपने प्रेम प्रदर्शित किया है, तो कहीं वियोग के सकरुण गीत गाये हैं। आपकी यह पवित्र और व्यापक भावना दिनों दिन विकसित हो रही है यह बड़े हर्ष की बात है।

अपकी रचनाओं मे विषम अवस्था का चित्रण कहीं-कहीं बड़ी सुन्दरता के साथ पाया जाता है। इस चित्रण मे आप की एक नवीनता है। हँसी के साथ रुदन, और वह भी बहुत ही स्वाभाविक, और बहुत ही तथ्य-पूर्ण, कुमारी विद्या इस स्वाभाविक-चित्रण के द्वारा अपने अधिक उज्वल और सुन्दर भविष्य के साथ तीव्रतर गति से आगे बढ़ती हुई दिखाई देती

हैं। विषम अवस्था का उनका स्वभाविक और सुन्दर चित्रण देखिये:—

उनकी करुणा के सागर का,
छोटा कण भी पाती,
मैं होती तन्मय, उनमे सखि,
विश्व समझता सोती।

\+ + +

समय आज भी नहीं पास है,
यही जान आकुल हूँ,
अधरों में मुसुकान थिरकती,
पर हैं आँखें रोतीं।

मुसुकान के साथ रुदन का ऐसा स्वाभाविक और तथ्य पूर्ण चित्रण बहुत कम देखने को मिलता है। 'अधरों' में मुसुकान और 'आँखे रोतीं' विषम अवस्था को प्रगट करने वाले इन वाक्य-खण्डों को एक स्थान पर बिठाकर कवियित्री ने अपने जिन भावों को जगाने का प्रयत्न किया है, वे उनकी वास्तविक काव्य-प्रतिभा के परिचायक है।

कुमारी विद्या जबलपुर के एक सुप्रसिद्ध भार्गव वंश में उत्पन्न हुई हैं। आपका कुटुम्ब अत्यन्त शिक्षित और उच्च श्रेणी का है। अभी आप शिक्षा पा रही हैं। हिन्दी साहित्य को आप से बड़ी आशा है। आप कविता ही की भाँति लेख, गद्य काव्य, और कहानी भी सुन्दर लिखती हैं।

कुमारी विद्या की निम्नांकित कविताओं में उनका काव्य-चमत्कार देखिये:—

[१]

आँसू

मेरे आँसू सींच रहे थे,
गत जीवन की हार,
उस पर तुम आये थे करने,
यह झूठा अभिसार।
दूर-दूर, बस दूर रहो, मत,
दिखलाओ यह प्यार,
एक साँस मे छोड़ चुकी हू,
यह कलुषित संसार।
आँसू, आँसू, आँसू है,
ये शिथिल व्यथा के भार,
इनमे प्रतिपल बनता है प्रिय,
एक नया संसार।

[२]

बन्धन

छोड़ना देव न मेरा हाथ,
सोचती तुम्हे साँस के साथ,
दृष्टि से दूर, सु-स्मृति के पार,
कहां खोजूं, अन्तर का प्यार।

तुम्हारी सुधि जीवन का सार,
इसी में पाऊँगी संसार।
भुला देना यह दुख मय बात,
कि होगा अब न अनन्त प्रभात।

+ + +

जहां पर होगा सुख मय प्यार,
और होगा अपना संसार।

[२]

लज्जा

जीवन की अनमोल घड़ी मे,
यह कैसा नूतन व्यापार।
देख-देख तुम लजा रही हो
कर में है फूलों का हार।
वे करते हैं प्रणय-प्रतीक्षा,
पाने को प्रेयसि का प्यार,
देवि ! विलम्ब करो मत देखो-
मुरझा जावेगा यह हार।
छोड़ो लज्जा, दे दो उनको,
अपना प्रथम हार; उपहार,
अरे कहीं यदि चले गये वे,
किसे चढ़ाओगी फिर हार।

[४]

हर सिंगार

फूले हैं अलि, सुन, हर सिंगार !
है ज्योति-ज्योति पग-पग बढ़ती,
सुरभित कर उपवन के रसाल,
आते बकुलों के झुण्ड नित्य,
देते शत दल पर मधुर ताल,
आ मुझमें पल भर नर्तन कर,
ले प्रिय की छवि से कर सिंगार।
दीपक से आकुल शलभ आज,
कहता-मिटने पर मुझे नाज,
मैं जानूँ क्या-सुधि-सलिल एक,
पहिराने आई मुझे ताज,
ले आज पहन मेरी कमरी,
मै पहनूँ तेरा विजय-हार,
फूले हैं अलि, सुन, हर सिंगार।

श्रीमती विद्यावती 'कोकिल'

'कोकिल' जी ने हिन्दी-साहित्य के उपवन में अपने सुमधुर गीतों के द्वारा अधिक सुख्याति प्राप्त कर ली है। अभी आपकी कविता का शैशव काल ही है, तथापि हिन्दी-जगत में आप का अधिक नाम है। आपकी रचनायें सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं, और आप कवि-सम्मेलनों मे भी भाग लेती हैं। कवि सम्मेलनों में आपकी रचनाये बड़े ही सम्मान के साथ सुनी जाती हैं। आप वर्त्तमान जागरण काल की महत्त्वाकांक्षिणी नारी हैं। वह नारी हैं, जिसके हृदय मे कवि हैं, और कवि में अपनी मौलिकता है। आपने युग परिवर्तन कारी कवियों और कवियित्रियों की धारा मे न बहकर अपनी कविता का एक नया संसार बसाया है। यद्यपि पूर्ण रूप से विकास न होने के कारण अभी वह संसार कुछ धुँधला है, किन्तु जो है, वह आप का है। उसमे एक निराली शैली है, निराला चमत्कार है।

कोकिल जी की कविता वेदना मूलक है। वे निराशा के

गीत गाती हैं। उनकी वेदना में भावना की विशालता है, निराशा में दार्शनिकता है। वे जिस लोक का अपने काव्य में चित्रण करती हैं, उसमें प्रेम तो है, किन्तु निराशा है, पीड़ा है। कवियित्री ही के शब्दों में उसके प्रेम लोक को देखिये:—

मैं प्रेम लोक की वासी।

+ + +

पीड़ा उसका यौवन है,
मधुमय है कसक कहानी।

किन्तु कवियित्री की पीड़ा में रुदन नहीं, उन्माद है, उल्लास है। कवियित्री अपने प्रेम लोक में जिस पीड़ा का अनुभव करती है, वह किसी चिरसत्य के लिये है। कवियित्री उसी की अनुसन्धान में आकुल है। पीड़ा ने उसे इतना पीड़ित कर दिया है, कि वह पीड़ा का अनुभव करती ही नही। इसी लिये तो वह पीड़ा को यौवन और मधुमय के नाम से पुकारती है। कोकिल जी की रचनाओं मे 'पीड़ा' की इसी भावना का जोर है। कवियित्री कहीं कहीं इतनी भावुक बन गई है, कि कहीं कहीं उसकी काव्य-कल्पनाये उलझ-सी गई हैं। भावुकता बुरी वस्तु नहीं, किन्तु उसके साथ ही साथ अनुभूति की प्रेरणा मे शक्ति होनी चाहिये।

कोकिल जी की रचनाओं में अनुभूति का अभाव अवश्य है, किन्तु कहीं-कहीं उनकी अनुभूति का अधिक विकास भी हुआ है। साधारणतः कोकिल जी मे अच्छी कवि-प्रतिभा

है। उनकी रचनायें मधुर, सुन्दर और हृदय को स्पर्श करने वाली हैं।

'कोकिल' जी आज कल प्रयाग में रहती ह। आप के पिता बाबू शिव प्रसाद श्रीवास्तव भी साहित्यिक अभिरुचि के व्यक्ति हैं। आपने 'कोकिल' जी को सुशिक्षिता बनाने के लिए अधिक चिन्ता की है। 'कोकिल' जी में आज जो 'कवि' बोल रहा है वह आप ही की अभिरुचि का परिणाम है। 'कोकिल' जी नवीन युग की विचारशीला कवियित्री हैं। आप साहित्य-सेवा के साथ ही साथ राष्ट्रीय और सामाजिक कामों में भी भाग लेती है। आप स्त्री सम्बन्धी एक पत्र भी निकालती हैं, जिसका सम्पादन भी आप ही करती हैं। आपके पति बाबू त्रिलोकीनाथ सिनहा भी स्वतंत्र विचार के शिक्षित व्यक्ति हैं। उनके सहयोग से आपके कवि जीवन का अच्छा विकास हो रहा है। आपकी रचनाओं का संग्रह भी पुस्तक रूप में शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है।

कोकिल जी की निम्नांकित कविताओ में उनकी कवित्व-शक्ति का अच्छा विकास हुआ है:—

[१]

मैं प्रेम लोक की वासी!

मधु पीकर इन साक़ी के,
प्यालों से मैं छक जाऊँ;

जग के लघु-लघु धन्धों से,
क्या कहते हो थक जाऊँ ?
अपने प्रियतम की दासी।
अपने छोटे त्रिभुवन की,
मैं हूं स्वच्छन्द कहानी,
पीड़ा उसका यौवन है,
मधु मद है कसक कहानी।
अभिलाषा प्यासी-प्यासी।
अपने उन्मद स्वप्नों मे,
मैं कभी सिहर उठती हूँ,
तम के घूँघट में स्मित भर,
मैं विद्युत की आभा-सी।
तेरी छवि की प्रतिमा-सी।

[२]

छिपा लूँ सुषमा तुम्हारी इन तृषित रीते दृगों में !
भेदन, सहन, अरु साधना,
जीवन-निशा के क्रम न हों,
हो एक बेसुध, विवश पल,
युग कल्प ये मेरे न हों,
बस, प्रेरणा की मदिरलय पर मूक नर्तन हो पगों में !
वेदना शर से विंधे,
भरते सजल उन्माद भर,

चिर विरह पंगु प्रवाह ले,
बोझिल व्यथित उर पड़े ढुर,
नव रंग रंजित सान्ध्य नभ के बिगड़ते धूमिल नगों में।
पुलक के सकुचित कुसुम,
मग रूँध ले सूने गगन मे,
कसक-कंचन तार वोधित,
और बढ़ने दे न पथ में,
झलकती गाथा तुम्हारी अचेतन गूँगे दृगों मे।

[३]

साक़ी मुझे पहचान ले !
इस हार में उस जीत में,
नव वेदना की रीति में,
इन प्रेमियों की भीर में,
अपना पराया जान ले !
वंशी न दे, वीणा न दे,
हाला न दे, प्याला न दे,
पद-चाप में भर ले सुभग,
मेरे सुनहले गान ले !
यह चातकों की प्यास है,
यह दीपकों की आग है,
यह चिर ज्वलन्त सुहाग है,
जीवन नहीं है मान ले !

[४]

आजा, आजा, ओ किरण बाल !
माँ के अंचल से मुख निकाल।

खिल उठे छूकर हृदय-सरोज
पिघल जाये तम-कारागार;
खोज लूँ प्राणों के प्रिय प्राण
चली आओ तत्काल !

इधर सूने पन का संसार,
उधर माया का मृदु अभिसार,
रहेगी सखि सूनी आज !
बाल क्या मेरी डाल !

किस अजान आलिंगन के वश,
अधर गरल में बहा जा रहा,
आज युगों से प्रेम अकिंचन,
डाल स्वर्ण का जाल !

द्रुम-दल के चल वातायन से–
ढुलका दे मादकता भर-भर,
लूँ बटोर उर में अधरों में,

डाल वह जादू डाल !
खेल डाल के कम्पित पट से,
कलियों के लज्जित घूँघट से,
नयन-हीन उत्सुकता के पल,
नहीं कल्प, चिर काल !

नव किरण

वर्तमान युग संक्रान्ति का युग है। अन्यान्य क्षेत्रों की भाँति साहित्य मे भी क्रान्ति का आवेग हैं। नूतन विचार-धाराओं के साथ अनेक कवि और लेखक उत्पन्न हो रहे हैं। उनमें बहुतों का जन्म तो क्रान्ति की प्रेरणा से हुआ है, और बहुतों में स्थायी प्राण है। क्रान्ति की प्रेरणा से उत्पन्न हुये अनेक कवि और कवियित्रियाँ बीते हुये दस वर्षों में अपनी झलक दिखा करके ही अदृश्य हो गये। यहाँ उनके नाम बताने की आवश्यकता नहीं। अब वे मासिक पत्र-पत्रिकाओं या साहित्य-जगत में बहुत कम दिखाई देते हैं। अब उनके स्थान पर नई किरणें निकली है। इन नवीन किरणों में जिनमे स्थायित्व की कुछ झलक दिखलाई पड़ी है, उन्हीं की एक-एक कविता यहाँ पाठकों के सामने भेंट की जा रही है:—

गीत

वीणा के सुमधुर तारों पर तुम गाती हो कोयल रानी !

जब प्रात सहेली उठ करके,

करती है मेरा शुभ स्वागत,

मैं बेसुध सी सुनती रहती,
तेरी बोली वह मस्तानी !
बीणा के सुमधुर तारों पर...... !
तुम मुग्धा-सी दोपहरी मे,
कू-कू करती हो डाली पर,
भोली भाली मंजुरियों से,
कहती हो कुछ गुप-चुप बानी !
बीणा के सुमधुर तारों पर...... !
फिर सान्ध्य-वधू के साथ-साथ,
तुम आजाती हो आँगन मे,
मै मस्त बनी सुनती रहती,
जब गाती हो तुम दीवानी !
बीणा के सुमधुर तारों पर.. ... !
तब आम्र बौर की ओर देख,
तुम मुसका देतीं एक बार,
फिर कू-कू कर उड़ जाती हो,
मैं हो जाती पागल रानी !
बीणा के सुमधुर तारों पर तुम गाती हो कोयल रानी !
—श्रीमती मीना देवी

[२]
जीवन-नौका

मेरी इस जर्जर तरिणी को,
जीवन-तट पर पहुँचा देना !

संसृति के जल में दिया डाल,
भावों का गूँथा नवल हार,
लहरों के भीषण अट्टहास में,
खेल रहा वह करुण प्यार,

सागर का कर्कश सिंहनाद,
औ, लहरों का गर्जन अपार,
उर कम्पित होता बार-बार,
झंझा का यह नर्तन निहार,

खेते खेते थकी किन्तु पा सकी न कूल किनारा,
भय-विह्वल कम्पित अधरों ने नाविक तुझे पुकारा,
कर्णधार है साथ नहीं लहरों में पथ दिखला देना !
हे नाविक-जर्जर तरिणी को जीवन-तट पर पहुंचा देना।

उठती है प्रलयंकर आँधी,
बढ़ती प्रशान्त से सिन्धु ओर,
मचली हैं यह बालक लहरें,
छू लेने दोनों पुलिन-छोर,

इस काले तम मे छिप आता,
जाने किसका नव करुण गान,
सुन-सुन हैं जिसको थकित शिथिल,
मेरे चिर दिन के तृषित प्राण,

लहरों की प्रतिध्वनि मे सुनती, मौन निमंत्रण तेरा,
आलिंगन करने झंझा को आकुल है उर मेरा।

उस पार पहुंचने को मेरे द्रुत साधन तुम बतला देना !
हे नाविक ! जर्जर तरिणी को जीवन-तट पर पहुंचा देना !

—कुमारी प्रभा भटनागर

[३]

चपला

चपल चपले कौन हो तुम !
गगन-पथ पर प्रेम-मग्ना तिमिर की चादर सम्हाले,
जा रही क्या रजनि सजनी दामिनी का दीप बाले ?
या किसी अनुरागिनी के हृदय का उद्‌गार हो तुम !
विरह संतप्ता किसी के हृदय की संस्मृति बनी सी,
चमक उठती हो निराशा सघन में आशा-परी-सी,
या किसी सुर सुन्दरी का मन्द सुस्मित हास हो तुम।
तमसि पथ पर भ्रान्त पथिकों के उरों का ताप हरने,
स्वर्ग दूती सी प्रकट होतीं विभा का भास करने;
रूप रम्या राधिका-सी रम रही घनश्याम में तुम;
पीत वर्णे ! त्वरित गति से रूप की आभा दिखाती,
सुप्त जगती के हृदय को निज प्रभा से जगमगातीं,
तड़ित क्या अलसित रगों मे शक्ति का संचार हो तुम,

—श्रीमती निरुपमा देवी

[४]

जीवन

जीवन गूढ़ पहेली !
सुलझाये से और उलझती—

यह अति गहन पहेली–
जान पड़ा सुख है जीने में,–
समझा उसे कभी मरने मे !
        पता नहीं यह दुख-सुख क्या है, ?
        कैसी अगम पहेली !

जीवन क्या है, एक भेद है,
समझ न कोई पाया।
सुख में दुख, दुख में सुख देखा,–
अद्‌भुत खेल खिलाया।
        विश्व नियन्ता तेरी माया–
        अतिशय कठिन पहेली !

—श्रीमती सुशीलाकुमारी मिश्रा

[५]

सावधान

१

जहाँ सुमन स्वच्छन्द विलसते,
    यह उपवन, वह बाग़ नहीं।
जहाँ कमल पर अलि मँडराते,
    यह वह रम्य तड़ाग नहीं।
यहाँ डाल से कली टूट कर,
    हारों मे गुँथ जाती है,
जीवन के अज्ञात तिमिर में,
    खिल-खिल कर मुरझाती है।

२

कहीं सुमन डाली में खिलकर,
तप-साधन सा करते हैं,
माली गण चंचल भौरों से,
मन ही मन में डरते हैं।
उठती हैं लहरें सागर में,
दब-दब कर रह जाती है,
विवश हृदय में उन्मादों की,
मूक व्यथा उपजाती है।

३

और कहीं चचल चित भौरे,
मधुमय जाल बिछाते है,
भावुकता से भरे सुमन के,
सरल हृदय फँस जाते है।
लोक-लाज के खुलने का जब,
कठिन कुअवसर-आता है,
वंचक कायर क्रूर भ्रमर उस,
दिन धोखा दे जाता है।

४

दुखमय आंसू में जीवन का,
सुख-समूह बह जाता है,
रुसवाई दुनिया में दिल पर,

अमिट दाग़ रह जाता है।
ऐ ! वन के स्वाधीन सुमन,
इस बीती पर विचार करना,
किसी भ्रमर के प्रेम-पन्थ पर,
फूँक-फूँक कर पग धरना।

—श्रीमती विष्णुकान्ता देवी अवस्थी

[६]

कवि ! मधुमय जीवन तेरा,
आहों मे तेरी लय है,
बिकलित साँसों में उलझन,
जीवन में कितनी सुषमा.
स्पन्दन में रस मय मधुवन,
कवि ! मधुमय जीवन तेरा !
किरणों में स्मित को देखा,
लहरों में मधुमय कम्पन,
ऊषा मे सुख को ढूँढ़ा,
तारों मे पाई सिहरन !
कवि ! मधुमय जीवन तेरा !
सुख-दुख की गति जीवन मे.
वाणी में जागृति विस्मृति.
जागृत स्वप्निल नयनों मे,

कितने मृदु चित्रों की गति !
कवि ! मधुमय जीवन तेरा !

—श्रीमती सुनन्दा देवी

[७]

क्यों सहसा यों उठता पुकार,
रे व्यथित हृदय तू प्यार, प्यार।
पा मधुर मीड़ हृद्-वीणा के,
झंकरित हुए यदि सभी तार,
तो सुना न अखिल विश्व को तू,
मादक स्वर लहरी बार बार।
अपने श्रवणों की सीपी में,
यह राग-स्वाति-सीकर भरकर,
रक्षित रख इसे कृपण-धन सा,
तू खोल न इसको जीवन भर।
क्यों सहसा यों उठता पुकार,
रे व्यथित हृदय तू प्यार, प्यार !
तू अपना प्रेम-पाठ पढ़ ले,
पुलकित तन हो, चिर मौन साध,
छिछला बन कर मत बहक देख,
यह प्रेम-जलधि है अति अगाध।
सीरी साँसें भर-भरकर, यों,
भड़का न प्रेम की बुझी आग,

हो चुकीं—भस्म अभिलाषायें,
उर में केवल रह गया दाग।
क्यों सहसा यों उठता पुकार,
रे व्यथित हृदय तू प्यार, प्यार।

—श्रीमती सुमित्राकुमारी सिनहा

[८]

समर्पण

उन अलक्ष्य चरणों पर अर्पित,
है यह मृदु उर का उपहार,
उस नीरव मन्दिर देहली पर,
बाला प्रेम-दीप सुकुमार।
मेरे चिर आकुल नयनों में,
बसता करुणा का संसार,
मेरे छोटे से जीवन ने,
राशि-राशि बरसाया प्यार।
कैसे तुम्हे बताऊँ निर्मम,
मेरा है अनन्त अभिसार,
मेरे प्राणों ने पाया पर,
तुमसे पीड़ा का आभार।

—कुमारी शान्ति गुप्ता

[९]

अन्तर्वेदना

जीवन के उस प्रथम प्रहर में,
सन्ध्या सा किसको देखा ?
बीत गये युग किन्तु तिमिर में,
अंकित वह स्वर्णिम रेखा।
विस्मृति की सिकता में किसका,
अमिट चिन्ह अंकित प्यारा !
धो-धो जिसे मिटा करती सखि,
चाँदी-सी दृग जल धारा !
वर्तमान का अन्त किन्तु,
मेरा अतीत है अमर अनन्त,
मेरे जीवन के पतझर पर,
लुट-लुट जाता सरस वसन्त !

—श्रीमती विद्यावती "सुधा"

[१०]

नैराश्य

बनाया यह मुरझाया हार,
वेध कर अपना हृदय-प्रवाल,
पलक अपने में गिन दिन-रात,
बिताये कितने युग बेहाल !
तड़ित मिस घन करते उपहास,

उलझता आता निठुर समीर,
वक्र शशि में है कुटिल कटाक्ष,
तारकों मे चिर दुख का नीर।
न आये देव, न आये देव,
हुआ सुख का दुख का अवसान,
निराशा का, नभ सा गंभीर,
पहिन बैठा है उर परिधान।
—कुमारी वागीशा देवी

[११]

आकांक्षा

प्रथम मिलन की मधु रजनी में,
हृदय-हृदय का नूतन परिचय,
रवि-सरसिज सम प्रीति-बद्ध हो,
स्नेह-दीप-सा हो ज्योतिर्मय।
सजल लोचनों के मधु जल से,
मिलन सरस हो जावे अतिशय,
भाव सरित की चंचल लहरें,
क्या न बनेगी प्रिय की ध्वनिमय !
उर मे एक एक हो स्पन्दन,
प्राणों मे हो प्राणों की लय,
युगल-हृदय की वंशी-ध्वनि में,
गुंजित हो यह राग प्राण मय।

मासिक धर्म सम्बन्धी सभी बातें, ब्रह्मचर्य्य-पालन, सदाचार शिष्टाचार, वायु, सेवन, व्यायाम, भोजन परदा, गाना आदि-आदि। इन सभी विषयों पर पूर्ण रूप से प्रकाश डाला गया है। भाषा सुन्दर सरल और रोचक है। थोड़ी पढ़ी लिखी स्त्रियाँ भी इसको समझकर लाभ उठा सकती हैं।

इसमे सिलाई-बुनाई तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी हाफटोन तथा लाइन ३४ चित्र भी दिये गये हैं। इससे पुस्तक की उपयोगिता में और भी वृद्धि हो गई है। मूल्य १॥)

समाधि दीप–ले०, श्री चन्द्र प्रकाश वर्मा 'चन्द्र'

वर्तमान समय के नवयुवक कवियों में श्री 'चन्द्र' जी का अपना एक विशेष स्थान है। किसी युवक की मनोवृत्ति में जो अल्हड़, उन्माद और अकांक्षा पाई जाती है वह सब उनकी कविता मे स्पष्ट रूप से मौजूद है। साथ ही एक विचार शील व्यक्ति की गम्भीरता और जीवन की जटिल समस्याओं का अवलोकन तथा विवेचन अपने नये निराले ढग का है। इन पद्यों मे केवल कल्पना ही नहीं है। हृदय के उद्गार हैं, चित्त की उद्विग्नता है तथा मन की लालसाएँ हैं।

प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी के प्रोफेसर डाक्टर रामशंकर शुक्ल 'रसाल' एम० ए० डी० लिट् पुस्तक की भूमिका में लिखते हैं—सब से अधिक रोचकता तथा रुचिरता तो उनमें इस बात की है कि उनमें कवि की आत्मानूभूति की निर्मल विभूति बिखरी तथा निखरी हुई है। नवयुवक कवि का कोमल कान्त हृदय-प्रान्त नितान्त नैसर्गिक रूप से उनमें प्रकट हो रहा है। मूल्य १)

पर्णिका—रचयिता गङ्गाप्रसाद पाण्डेय

पाण्डेय जी प्रधानतः गीत कवि हैं उनकी पर्णिका अपने गीत गुणों से युक्त हृदय की परमार्जित अनुभूतियों का सरसता के साथ निरूपित करना इस पुस्तक की अपनी विशेषता है। इसमें आपको कल्पना का सौन्दर्य तथा भावनाओं की भव्यता मिलेगी कवि के इन गीतो मे सगीत मय सौन्दर्य विखरा हुआ है। वर्त्तमान काव्य-प्रेमियों के लिये पर्णिका पठनीय और संग्रहणीय है मूल्य केवल ॥=)

कर्ण फूल---नरेन्द्र जी कविता-नभ के उज्जवल नक्षत्र हैं। आपकी कविता मे अबाध गति, कोमल लय और प्राकृतिक सौन्दर्य समान रुप से पाये जाते है। शब्द-व्यजना, भाव-तरगे और सुरम्य भावना प्रत्येक स्थल पर दृष्टिगोचर-होगी। नवयुवक कवि की यह कमनीय कृत प्रत्येक हिन्दी प्रेमी को मानसिक सतुष्टि और हार्दिक सुख के लिये खरीदना चाहिये। मूल्य केवल १)

लालिमा—ले०, पं० भगवती प्रसाद वाजपेयी

वाजपेयी जी की गणना हिन्दी साहित्य के अग्रगण्य कलाकारो म मे है। उपन्यासकार तथा गल्प लेखक की हैसियत से तो आप अपना सानी नहीं रखते। उन्हीं की यह एक कृति है। इसके सम्बन्ध मे अधिक लिखना व्यर्थ सा है। प्रथम संस्करण तो चन्द दिनो में ही समाप्त हो गया। यह दूसरा संस्करण है। प्रत्येक उपन्यास तथा गल्प प्रेमी को इसे पढ़ना चाहिये। मूल्य १॥)

कन्या प्रबोधनी प्रथम भाग—यह पुस्तक ६ वर्ष से लगा कर १० या १२ साल तक की लड़कियों के लिये तैयार की गई है। इस पुस्तक में उन्हीं के लायक सरल सुबोध और रोचक भाषा भी रक्खी गई है। सबेरे उठना, सफाई, अच्छी सीख, बहन, प्रेम, पत्र लिखना घर के काम, बड़े घरों की लड़कियाँ बीमार क्यों होती हैं, चित्र कारी, सिलाई, शिक्षा, धब्बे छुड़ाना, हँसी खेल, माता का उपदेश, गुड़िया का पाठ, छुट्टी का दिन आदि कितने ही विषयों पर शिक्षाप्रद लेख दिये गये हैं। मूल्य केवल ।=) छै आना।

कन्या प्रबोधनी द्वितीय भाग—यह दूसरा भाग दस बरस से लगा कर उन लड़कियों तक के लिये है जो नई बहू बनी हैं या बनने वाली हैं। इस भाग में पहले भाग से कुछ कठिन, पाठ हैं। तुम स्वस्थ और सुन्दर कैसे बनोगी, खेलना, कूदना जरूरी है, शुद्ध वायु में घूमना, पत्र लिखना घर कैसा होना चाहिये, लड़कियों के गुण और सच्चे गहने, सखी सहेली, सेवा धर्म, आदि विषयों पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। मूल्य अजिल्द ।।।) सजिल्द का १)

सब प्रकार की पुस्तकें मिलने का एक ही पता—

प्रमोद-पुस्तक-माला, कटरा, प्रयाग।